श्री

धर्मतत्वसंग्रह.

(दशविध धर्म का विशेषतः उपदेश.)

PRINCIPLES OF RELIGION.

being

THE TEN COMMANDMENTS FULLY EXPLAINED

by

Shri Amolakh RishiJee.

यह ग्रंथ

सत्य धर्माभिलाषी सज्जनों के लिये

बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजीने

बनाया

और दानकी (एवतमाल) निवासी

किसनलालजी हरखचंदजी. सांकला

पुष्करजी (अजमेर) वालेने प्रसिद्ध किया.

प्रत ८००.

वीराब्द २४४६ } अमूल्य { वि. १९७६

द्वितीयावृति—प्रत १००० सर्व प्रत—३७००.

The true spirit of religion comforts, as well as composes the Soul. ...Palmer.

" सच्चे धर्मिष्ठपन से आत्मा को दिलासा और शांति मिलती है " —पामर.

श्री जैन शास्त्रोद्धार प्रिंटिंग प्रेस स्टेशन रोड सिकंदराबाद [द.]

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानं च, सतां धर्मः सनातनः ॥

मन से, वचन से, और क्रिया से प्राणी मात्र का द्रोह नहीं करना, सब पर अनुग्रह करना और दान देना; उन को ही सनातन धर्म कहा जाता है.
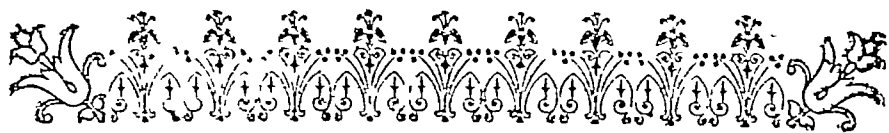
भूमिका.
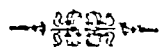
आज काल अंग्रेजोनी रीत जोईने आपणा देशमां पण एवो रीवाज दाखल थयो छे के, उत्तम परंतु अप्रसिद्ध ग्रंथोनो संग्रह करी अन्य कोई लेखक पासे तेनी प्रस्तावना अथवा भूमिका लखावी ते भूमिका सहित ग्रंथो बहार पाडवा. ए मुजब, विद्या-विलासी मुनिराज श्री अमोलख ऋषिजीए रचेलो एक ग्रंथ नाशिक जील्लामां आवेला इगतपूरी गामना एक श्रावक भाइ मुलचंदजी हजारीमलजीना वांचवामां आववा थी तेमणे विचार्युं के, जो आ पुस्तक कोई सारा लेखकने सोंपी थोडाएक सुधारा वधारा करावी तथा भूमिका लखावी प्रगट कर्यो होय तो घणा जीवोने हितकारक थइ पडे. ए समइए श्री 'स्था. जै ज्ञा प्र मंडल' नां घणां पुस्तको जोएलां होवाथी स्वाभाविक रित्ये तेमनी दृष्टि ते तरफ गइ अने तेमणे ते हस्तलिखित प्रत उक्त मंडलने सोंपी. मंडले शिरस्ता मुजब ते प्रत मने मोकली आपी अने ए रीते आ पुस्तक नी भूमिका लखवा-

वानुं अने सुधारा-वधारा करवानुं माग शिर आव्युं.

आ पुस्तकमां ते विद्याविलासी मुनिराजे जैन धर्मनां कु[illegible] सिद्धांतो संक्षेपमां समाववा कोशीश करी छे. जूनां जूदां जै[illegible] सूत्रो थोकडा अने ते उपरांत अन्य धर्मनां पुस्तकोनो कर्त्ताए छू[illegible] थी उपयोग कर्यो छे, ते चालाक वाचक आ पछीनां पानां उपरथी जोई शकशे.

जैन धर्ममां मूख्य १० फरमान (Ten Commandments) छे ते एवां तो सादां छे के हर एक मनुष्य समजी शके, अने एवां तो गंभीर छे के विद्वानो तेमांथी हर हमेश नूतन नूतन च- त्कार शोध्यां ज करे; ए फरमान आ लोकमां प्रत्यक्ष फलदा यीवडे छे अने परलोकना फलनी 'गेरन्टी' आपे छे उभय प्रक[illegible] लाभकारक आ फरमानो थी, खुद श्रावक कोममां जन्मेला जनोनो मोटो भाग अद्यापि अज्ञ छे; तेनुं कारण मने तो एम जणाय के, 'अमुक फरमान पाळवाथी तमने मरण पछी सुख मळशे' ए वचन उपर आ जमानो विश्वास राखतो नथी. आज तो दरे क वस्तुने कारण सहित अने प्रत्यक्ष लाभ बतावीने रजू करवा आ[illegible] तो [illegible] त माननीय थइ पडे छे. आ पुस्तकना कर्त्ताए धर्म फरमानोनुं एवी ज रीते प्रतिपादन कर्युं जणाय छे.

'दश फरमानो' समजाववा साथे, वच्चे वच्चे, घणीएक तत्त्वनी बाबतो-शास्त्रीय बाबतोने पण कर्त्ताए छेडी छे. एथी आ पुस्तक वांचनारने विविध उपयोगी विषयोनुं ज्ञान थाय तेम छे.

श्रीमद् शंकराचार्य कृत 'मोहमुद्गर' नामनुं पुस्तक आटलुं बधु लोकप्रिय थइ पडयुं अने दरेक धर्मना मनुष्यो तेमांथी आनंद सहित सार लेवा लाग्या, तेनुं कारण मने तो एम भासे छे के, ए पुस्तकनी रचना घणी सादी अने दलीलो अंतःकरणने विंधे एवी छे दलीलो विनाना अने मात्र शास्त्रोनां लूखां टांचण वाळा पुस्तकने विद्वानो पुस्तकना हिसाबमां गणता नथी अने सामान्य जनो तेने कशा काममां लइ शकता नथी. 'मोहमुद्गर' नी माफक ज आ पुस्तक पण सरळ अने असरकारक दलीलो थी. व्यवहारोपयोगी सूचनाओथी-आत्मसंतोषनी चावीओथी एवुं तो आकर्षणीय कर्युं छे के, दरेक खुबीओ चुंटी काढी तेनुं दिग्दर्शन करवामां अयोग्य वाचकनी वखत खुटाडवा करतां खूद ते ऊखाण पासे ज तेने जलदी लइ जवो ए वधारे उत्तम मानुं छुं

परंतु वाचकने मुनि श्री पासे (तेमना लखाण पासे) रजु करता पहेलां एटलुं जणाववुं मारुं कर्त्तव्य छे के, मुनिश्रीए उपदेशनी भाषा मिश्र राखी छे; एम समजीने के गुजराती, मारवाडी

हिंदी एम भिन्न भिन्न भाषा बोलनारा मनुष्यो पण आ पुस्तक सहेलाइ थी समजी शके. भाषा शास्त्रीओए, एटला माटे. भाषा संबंधी बारीकाइ बतावी टीका करवानो श्रम नहीं उठावतां एटलो श्रम पुस्तकनो सार ग्रहवामां लेवो, एवी मारी प्रार्थना छे.

लग्न-मृत्यु आदि अनेक प्रसंगे जे मोटां खर्च करवामां आवे छे ते खर्चोमां थी अमुक हिस्सो बचावी आवां शुभ कार्य करवाथी बेवडो लाभ थाय छे; एक तो जटली रकम ते आरंभ समारंभना कामगांथी बचावी तेटला पापमांथी बच्या. अने वळी अनेक जीवोने सद्ज्ञान प्राप्तिना साधन रूप थवाथी पोतानां ज्ञानावरणीय कर्म नाश पामे छे.

आ पुस्तक जे जे सज्जनोना हाथमां आवे तेमणे अथ इति लक्षपूर्वक वांचवा ने उपर विचार करवा अने तेनो तोल करतां व्याजबी जणाय तो ते प्रमाणे वर्त्तन करवा मारी प्रार्थना छे. वाचक वर्ग पैकी जेओ श्रीमंत होय तेओ प्रत्ये हुं आग्रहपूर्वक विनंती करीश के, जो आ पुस्तकथी तमने संतोष मळे तो आवां बीजां पुस्तको छपावी अगर रचावी, छपावी मफत वहेंचवा. एथी पोताना उपर थयेला उपकारनो बदलो वाळ्यो गणाशे.

"जैनहितेच्छु" ऑफिस
अमदावाद.
संवत-१९६२

वाडीलाल मोतीलाल शाह.
जॉइन्ट एडिटर-"जैनहितेच्छु"

प्रस्तावना.

धर्म का सच्चा अर्थ कर्त्तव्य अथवा फरज होता है. कर्त्तव्य परायण मनुष्य ही जगत् मे मान पाते है.और वे ही सुखी होते हैं. तैसे ही उन का विश्वास भी सब करते हैं. जिस मनुष्य मे कर्त्तव्य का भान नहीं होता हैं अर्थात् मुझे क्या करने योग्य है और क्या छोडने योग्य है ऐसा ज्ञान जिस को नहीं है वह मनुष्य वायु से उडते हुवे तृण के जैसा इधर उधर भटकता फिरता हुवा व पीडित होता हुवा दुःखी होता है. और इस संसार रूप घोर अटवी में आधि व्याधि उपाधि में तबा होकर अन्त कुगति में जाता है. इस लिये सुखेच्छु मनुष्यों को धर्म की परमावश्यक्ता है

सच्चा धर्म मनुष्य को मात्र परलोक में सुखी होगे इतना ही कहकर अटकता नहीं है परंतु इस लोक में भी प्रत्यक्ष फलद्रूप होता है. धर्म को जानकर उस प्रकार वर्ताव करनेवाले मनुष्य को इस जन्म में ही एक इस प्रकार का खजाना प्राप्त होता है कि-

जस की बराबरी करने को हजारों कोहीनुर भी समर्थ नहीं होते हैं. यह खजाना न तो दौलत के रूप में होता है और न बादशाही सत्ता के रूप में होता है. क्योंकि दौलत से या बादशाही से सुख प्राप्त करनेवाले कोई विरले ही देखे जायेंगे. परंतु यह खजाना तो अन्तःकरण के सुख के प्रभाव में होता है. संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है कि जो मनुष्य को चिन्ता में तथा उपाधि के दुःख से बचा सके? यह शक्ति तो फक्त अन्तःकरण के सुख के प्रभाव में ही है कि जिस को किसी भी प्रकार की आधि व्याधि उपाधि दुःखित बना सके ही नहीं.

'अन्तःकरण का सुख' यह कुछ आकाश पुष्पवत कल्पित पदार्थ नहीं हैं परन्तु सच्चा है. इस सुख के अनुभवी बहुत ही कम मनुष्यों हैं. बहुत मनुष्यों तो इसे कल्पित ही मानते हैं इस लिये उक्त कथन सिद्ध करने कुछ दृष्टांत कहता हूं—भगवंत महावीर स्वामीजी के शिष्य कामदेव श्रावक अन्तःकरण के सुख (धर्म) में मशगुल बने थे. उन को देवताने पिशाच-का हाथी का और सर्प का रूप बना कर महा दुःख दिया, परन्तु कामदेव सम्यक् प्रकार जानते थे कि मेरा धर्म आत्मा ही है, आत्मा और शरीर भिन्न २ है. शरीर की रक्षा के लिये धर्म की हानि करना यह

अनर्थ है, इत्यादि विचार से उनने अपना तार टूटने दिया नहीं। इस से देवकृत दुःख उन को किंचिन्मात्र भी हुवा नहीं बल्के देव जैसा समर्थ भी हार कर उन के पांव में पडगया ! यह कुच्छ ऐसी तैसी शक्ति नहीं है. धर्म (कर्तव्य) परायण बनने से क्या फायदा है ? उन को उत्तर रूप यह दाखला प्रथम नंबर का है. दूसरा—ग्रिस में तीस जुलमगारों के जमाने में दुनिया बडी दुःखी थी उस वक्त क्रेटीस नामक एक तत्त्ववेत्ता था उस के वचनामृतो—"देखो ! मेरी तर्फ निघा करो ! मेरे पास शहर-घर-जमीन-धन स्त्री पुत्रादि सम्बन्धि कोई नहीं है. नोकर भी नहीं है, मैं जमीन पर सोता हूं मुझे फटा एक कुडता का और जमीन असमान का मात्र मुझे आधार है तो क्या मुझे किसी वस्तु का टोटा है?क्या मैं दिलगिरी और डर रहित नहीं हूं ? क्या मैं स्वतंत्र और सुखी नहीं हूं. जो मैं चाहुं वो मुझे न मिले ऐसा कभी हुवा है. और अनिच्छित के लिये कभी मैंने किसी प्रकार का प्रयत्न किया है, कभी किसीने मेरा मुखम्लान देखा है. तुम जिस का खोफ रखते हो और जिस की तारीफ करते हो उन से मैं किस प्रकार मिलता हूं. क्या मैं कभी उन का गुलाम बना हूं ? परंतु वे राजा महाराजा मुझे मिलने के लिये उन के राजा या मालिक की तरह चहाते हैं ! यही दाखला अपने साधु महात्माओं के लिये हैं, यह प्रत्यक्ष दाखले

मनुष्य को धर्म (कर्तव्य) परायन बनाते हुवे चित्र देखाने हैं. तथा दौलत व बादशाही सत्ता से भी यह सुख विशेष नहीं हो इस लिये यह स्पष्ट है कि-धर्म परायण जिन्दगी से ही सच्चा सुख प्राप्त होता है ? परंतु दुनिया के सब दुष्टों का और दुःखद वस्तुओं का नाश करने को काल भी अशक्त है तो अन्य का क्या कहना ? तथापि धर्म परायण लोगों इन से अपन को बचा सकते हैं, सब जमीन पर चमडा नहीं बिछा सकोगे परंतु अपने पेरों के रक्षण के लिये जूते पहनते हैं वे अपने पांवों को काँटे कंकर से बचा सकते हैं. वैसे ही इस अनादि सृष्टी में दुष्ट पुरुषों दुष्ट बनावो और पदार्थों होते ही रहते हैं. उन का नाश कर सुखी बनने की आशा कोई रखे तो वह व्यर्थ है. उल्टा वह विशेष दुःखी होगा. परंतु अपनी आत्मा को उस की असर ही नहीं होने पावे ऐसा उपाय करना खुद ही की सत्ता में हैं; वह उपाय वही है कि जो कामदेवादिने धर्म की सहायता से किये.

अर्वाचिन समय में धर्म निकम्मी बातों में और बाह्य क्रिया में ही माननेवाले बहुत लोगों दृष्टीगत होते हैं. उन पर किसी प्रकार का आक्षेप कर उन का दिल दुःखित करने के पाप का त्याग कर अपनी मानताही उन को बताना अच्छा है. जैसे किसी

के घर में बहुमूल्य वान रत्न दटे हुवे हैं परंतु गृहस्थ उन रत्न को निकाल कर उन को बेचकर उपयोगी वस्तु खरीद कर काम में नहीं लावे, तहां तक वे रत्नों निकम्मे हैं तैसे ही प्राणी को प्राप्त हुई कुदरतीशक्ति रूप रत्नों का सत्कार्य में व्यय नहीं करे वहां तक वह निकम्मी ही है उस शक्ति का व्यय सत्कार्य में करना यही धर्म है इतनी समझ जो सब मनुष्यों को हो जावे तो इस संसार में सदुर्गुणों कुव्यसनो और दुराचरणों प्रायः अदृश्यही हो जावे. और सब के साथ मैत्रीभाव का सूर्य प्रकाशित हो जावे शारीरिक व्याधि और मन से चिन्ता भी कम हो जावे, और अखिल सुख के भोक्ता सब प्राणीयों बन जावे.

अब यह जानना आवश्यकीय है कि वह धर्म (सद्कर्तव्य) कौनसा है कि-जिस में शक्ति का व्यय करने से आत्मा सुखी बने? यह प्रश्न बडा ही अटपटा है. जगत् के झगडे इस ही में आकर भराये हैं और धर्म के नाम से अधर्म इसी से होता है. जो सच्चा धर्म जैन का कहोगे तो वेदांतीयों लडने खडे होते हैं और वेदांतीयों को सच्चे कहो तो जैनों खलवलाट करेंगे. इस प्रकार धर्म के झगडों ने बहुत से भोले जीवों को धर्म विमुख बनाये हैं. और इस से ही बहुत से नास्तिकमति बनगये हैं. इस प्रकार

जो धर्म के झगडे में पडे हैं वे स्वयं पोकल धर्मी हैं ओर वेचारे अलीण आत्मा को नास्तिकपनेके खड्ड मे धकेलते है. सच्चे धर्मीयों का कर्तव्य तो एसे परभी दया करने का है. इसलिये किसी भी प्रकार की चर्चा में उत्तर के किसी का भी अन्तःकरण को नहीं दुःखता हुआ किसी भी धर्म को ऊंच नीच पद अर्पण नहीं करता हुआ फक्त मेरा यत्किंचित बुद्धि द्वारा श्रवण पठन मनन करने से जो मुझ अनुभव प्राप्त हुआ है उन हीं वातों का इस पुस्तक में विवेचन कर धर्माभिलाषियों के कर कमल में समर्पण करता हुं. वे इसे पठन कर उन को बुद्धि में योग्य लगे तो वे इने स्वीकार कर इस धर्म का मन में आवे वह नाम स्थापन करें.

अमोलक ऋषिजी.

यद्यपि आज पर्यन्त इस (धर्म) विषय पर बहुत ग्रन्थों प्रसिद्धी में आये हैं तथापि व्यवहार और निश्चय में जो सदैव उपयोग में आता रहे हमेशा होते हुवे दुःखों से आत्माको बचासके ऐसे ग्रन्थ की इस वक्त बहुत ही जरूरी आन उपस्थित होती है, उस आवश्यकता की खामी को पूर्ण करने योग्य ग्रन्थों में का एक यह भी ग्रन्थ है. इस में जैनआदि अनेक धर्मावलम्बियों के मानने

योग्य अर्थात् सर्व धर्मानुयायी को अनुकूल और स्वीकारने योग्य मुख्य फरमान-१ क्षमा, २ निर्लोभता, ३ सरलता. ४ निरभिमान. पना ५ लघुता, ६ सत्य, ७ संयम. ८ तप, ९ ज्ञान, और १० ब्रह्मचर्य इन दश धर्म का विवेचन दशों ही प्रकरण में किया है.

☞ इस पुस्तक की प्रथमावृत्ति जैनहितेच्छु के मालिक व अधिपति भाइ वाडीलाल मोतीलाल शाह के हस्त से पुनरावृति लिखवाकर सं० १९६२ में इगतपुरी व घोटी (नाशीक) वाले श्रावकों की तरफ से १५०० प्रतों प्रसिद्ध की थी प्रथमावृत्ति लिखते वाडीलाल भाईने महाराज श्री के लेख में वहुत न्युनाधिकता कर अंग्रेजी दाखले दृष्टान्तों से शोभित बनाइ थी. वैसे ही इस का गुजराती भाषानुवाद भी वाडीलाल भाइने लिखा था उस की आवृत्ति भी भाइ भीखमदासजी संचेती वेजापुर (औरंगाबाद) वाले की तरफ से १२०० प्रतों छपवा कर प्रसिद्ध की थी. सब २७०० प्रतों ही अमूल्य दी गई थी वे लोगों को वहुत प्रिय वनी. और उपराउपरी मांग आती रही थी; परंतु पुस्तक सिलक में न होने से सब को निराश करने पडे थे.

सं० १९७६ का चतुर्मास बालब्रह्मचारी पंडित मुनि श्री १००८ श्री अमोलक ऋषिजी ज्ञानानन्दी श्री देवऋषिजी वैयावच्ची श्री राज ऋषिजी, तपस्वी श्री उदयऋषिजी, और विद्याविलासी श्री

मोहन ऋषिजी ठाणा ५ सिकंदराबाद तथा अलवाल में विराजमान थे तब दाणकी [एवतमाल जिल्हे] के निवासी श्रावक श्राविका का संघ महाराज. श्री के दर्शनार्थ आया थ. उन में धर्मात्मा भाइ किसनलालजी हरखचंदजी सांकला पुष्करजी (अजमेर) वाले रू० ४०० ज्ञान खाते में दिये जिस खरच से इस पुस्तक की दूसरी आवृत्ति प्रसिद्ध करने का अवसर प्राप्त होते ही इस जैन शास्त्रोद्धार प्रेस सिकंदराबाद में छपवा कर अमूल्य दी जाती है

पुष्कर (अजमेर) के निवासी ओसवाल बडे साथ बख्तावरमलजी के बडे पुत्र भाइ किसनलालजी का जन्म सं० १९३८ का है और छोटे भाइ हरखचंदजी का जन्म सं० १९४४ का है यह दोनों भाइयों बचपन से ही साधु संगत और धर्म ज्ञानाभ्यास कर धर्म के बडे प्रेमी बने हैं व्यापारार्थ दोनों भाइ दक्षिण देश एवतमाल जिल्हे के दानकी ग्राम में अभी रहते हैं. इन का यह ज्ञानवृद्धि का प्रेम उदारता सद जनों को प्रसंशनीय व अनुकरणिय है

मणिलाल शिवलाल शेठ,

म्यानेजर-जैन शास्त्रोद्धार कार्यालय.

धर्मतत्त्वसंग्रह द्वितीयावृत्ति का शुद्धिपत्र.

पृष्ठ	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
१०	२	समजे	नहीं समजे
११	नोट	१डद क	१० दंडक
१९	४	ही	०
३०	१	लोहो	तण्हा
,,	५	ा	वा
३४	२	ि	रि
३६	३	तृण्गा	तृष्णा
३८	६	दरन्तु	परंतु
४०	८	र्वी	र्सवी
,,	१२	दृष्टि	सपर्दृष्टी
४२	५	।प्रेन	प्रिय
४५	२	पूंर्ज	पूंजी
,,	९	सगे	लगे
,,	,,	लगे	सगे
५८	६	पता	पना
,,	११	ओ ।	ओप
६२	३	ज	तेज
६३	११	कातती	कातरी
६६	५	श्वाशोच्छ्वा	श्वासोच्छ्वास
७१	१४	८४०००	८४००००००

पृष्ठ	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
८९	१०	पूर्व	१४ पूर्व
"	१४	नात्व	तत्त्व
९६	१४	म्र	नम्र
११२	२	के	को
"	६	कहा	कह
"	२०	ग्रदीवाकडे	बुद्धेवाचे
११३	५	होने	०
११४	३	ग्व	प्व
"	१०	सौह्माग्य	सौभाग्य
११५	९	चैसे	मैसे
१२०	१३	लोम	लोक
"	१५	ि	ति
१२७	१६	यका	क्या
१२८	५	क्रिर्म	किस
१३५	नोट	हुतसुनें	हुताशनें
"	"	रूप २	रूप
१३६	११	म्नान	स्नान
१३८	१०	पटन	पठन
"	१२	पंत्री	पंत्री
१४८	४	आचारम	आचार
"	६	जरल	महान

पृष्ठ	ओली	अशुद्ध	शुद्ध
१५७	८	ा	री
,,	१०	अधो ति	अधोगति
१५८	नोट	पगीवा	हामीया
१५९	३	और खुल्ला नहीं रखना	०
,,	६	दर्प	हर्ष
१६०	८	मर्य	गर्ये
१६१	१०	क्रक्ष	क्रक्ष
१९३	की नोट १९ पृष्ठके हेडिंग कीहै		
२०१	६	अलोभ	भलाभ
२०५	१५	खोजा	खोजी
२०६	७	भाषणकल	भाषणकल्प
,,	१०	मी	०
२०९	१२	ही	केही
२११	९	हानेक	होने के
२१६	३	क की	केद की

इस सिवाय ह्रस्व दीर्घ व भाषा सम्बन्धी जो अशुद्धियाँ रही है उसे शुद्ध कर यत्ना से पढिये।

ऋषिजी महाराज के शिष्य बने ज्ञानाभ्यास कर तपश्चर्या करने लगे. एक से लगा १.२ १ दिन का तपअनुक्रम छाछके आगार से किये. अन्यदा कविवरेन्द्र श्री तिलोकऋषिजी महाराज क पाटवीय शिष्यवर्य पंडितराजश्री रत्नऋषिजीमहाराज के साथ श्री केवलऋषिजी भोपाल हो इच्छावर पधारे. उस वक्त अमोलकचन्द खेडी ग्राम में अपने मामा के वहां रहे थे. वे दर्शनार्थ आये और पिता को देख वैरागी बने. स० १९४४ के फाल्गुन में दीक्षा धारन की, इन को पूज्य श्री खुबाऋषिजीने अपने जेष्ट शिष्य आर्य मुनि श्री चेना ऋषिजी के शिष्य बनाये, थोडे ही काल में गुरु का वियोग होने से तीन वर्ष पर्यन्त श्री केवल ऋषिजी के साथ विचरे, फिर श्री केवल ऋषिजी एकल विहरी बने. तब अमोलक ऋषिजी दो वर्ष श्री भेरुऋषिजी के साथ रहे, फिर रत्नऋषिजी महाराज की साथ इग्यारा वर्ष रहे. इन महा पुरुषो के संग से शास्त्राभ्यास ववाव्याख्यान कलादि बहुत गुणों की प्राप्ति हुई. फिर श्री केवलऋषिजी महाराज का मुकाबला हुआ. तब तपस्वीजीने कहा कि

अब मैरी बृद्धावस्था प्राप्त हुई है इस लिये मुझे संयम में सहाय देना यह तेरा कर्तव्य है. तब श्री केवलऋषिजी के साथ अमोलकऋषिजी विचरने लगे. बंबइ में चर्तुमास किया वहां " रत्नचिन्तामणि मित्र मंडल "की स्थापना हुई. यह संस्था अभी बडा उपकार रही है इगतपुरी में चतुर्मास किया वहां इस ही पुस्तक की प्रथमावृति की १५०० पुस्तको नित्यस्मरण की २००० पुस्तको का अमूल्य दान दिलाया. आगेमार्ग का महा परिश्रम उठाकर हैद्राबाद सिकन्द्राबाद जैसे बडे क्षेत्र साधुमार्गी धर्म में प्रख्यात किये, यहां बृद्धावस्था के कारण से तपस्वीजी स्थिरवास रहे. जिस से राजाबाहादुर लालाजी सुखदवे सहायजी ज्वालाप्रसादजी जोंहरी जैसे राजमान्य श्रीमान गृहस्थ धर्म प्रेमीबने. जिनोंने जैनसाधुमार्गी धर्मार्थ एकलाख रुपेका सद्व्ययकर श्वे ० स्थानक ० जैन कान्फन्सकी पांचवी बैठक, तीन सद् गृहस्थोंकी दीक्षा और शास्त्रोद्धार कर बत्तीस ही शास्त्रो के १००० भंडार का अमूल्य ना वगैरे महा धर्म कार्यकिये तथा कर रहे हैं. तपस्वि

राज श्री केवलऋषिजी महाराज सं० १९७१ श्रावण वद्य १३ मंगलको समाधी मरणको प्राप्त हुअे. बाद में उक्त लालाजीने शास्त्रोद्धार जैसे परमोपकारी कार्यारंभ किया, महाराज श्री अमोलक ऋषिजी ने तीन वर्ष में ३२ ही शास्त्रों का हिन्दी भाषानुवाद कर दिया और वह अब थोडे दिनों में प्रसिद्ध भी हो जायेंगे. महाराज श्रीके सद्बोध आजतक सवालाख जैन पुस्तको का अमूल्य लाभ भारत वर्ष के धर्मार्थी जनों को मिला है.

मुनि गुणका

भक्त

मणिलाल शिवलाल शेठ

॥ ॐ ॥ असिआउसायनमः ॥

॥ श्री ॥

धर्मतत्त्वसंग्रह.

प्रवेशिका.

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइ मणुत्तरं ॥ १ ॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

इच्छित कार्य सिद्ध करने के लिये प्रथम इष्टदेव को नमस्कार करता हू. 'सिद्धाणं' अर्थात्

जिनोंने सर्व कार्य सिद्ध किये. उन अरिहंत सिद्ध* भगवान को, और 'संजया' अर्थात् 'संजति' (संयति) सो आचार्य, उपाध्याय और साधुजी तथा सर्व लोक में शान्ति करनेवाला श्री शान्तिनाथ प्रभु को मेरा त्रिकरण शुद्ध भावपूर्वक नमस्कार हो !

यह सिद्ध—संयति का शरण ग्रहण करके निज आत्मा का और सर्व जनों का कल्याणार्थ दश प्रकारका जो धर्म प्रभुजीने फरमाया है उस का कथन स्वल्प बुद्धि अनुसार करता हूं. सो सब जीवों को हित कर्ता होवो!

धर्म के १० प्रकार.

धर्म १० प्रकार से होता है, जिसको १० 'पवित्र फरमान' अर्थात् हुक्म भी कहते हैं. तथा—

* सिद्ध २ प्रकार के हैं:-(१) 'भापक' सिद्ध, और (२) 'अभापक सिद्ध अभापक सो निराकार सिद्ध प्रभु और भापक सिद्ध सो अरिहंत भगवान, कि जो भवान्तर में सिद्ध होनेवाले हैं.

गाथा.

खंती[१] मुत्तीय[२] अज्जव[३], मद्दव[४] लाघव[५] सच्चे[६] ।
संजम[७] तवे[८] चेइय[९], बंभचेरवासीयं[१०] ॥ १ ॥

अर्थः—(१) खंति—क्षमा (२) मुत्ती—निर्लोभता (३) अज्जव—ऋजुता—सरलता (४) मद्दव=मृदुता-नम्रता—निराभिमानीपना, (५) लाघव—लघुत्व—हलकापणा, (६) सच्चे—सत्यता; (७) संजम—संयम; (७) तवे—तप; (८) चेइय—ज्ञानाभ्यास; और (१०) बंभ—ब्रह्मचर्य. अब इन दशों ही का अलग २ प्रकरणों में विस्तारसे बयान किया जायगा.

※ नोट—धृतिःक्षमा दमस्तेय, शौचमिन्द्रियनिग्रहः धैर्य विद्यो सत्य मक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥ २३ ॥ मनुस्मृति—नीती शास्त्र कर्ता मनुजीने भी, १ तुष्टि २ क्षमा, ३ आत्मदमन, ४ अचौर्य, ५ शौचता ६ इन्द्रियोंका निग्रह ७ धैर्यता, ८ विद्या, ९ सत्य, और १० अक्रोध यह १० धर्म के लक्षण कहे हैं.

राक्षसकी उपमा भी क्रोधको दी जाती है. जब क्रोधरूप राक्षस मनुष्यमें प्रवेश करता है तब वह मनुष्य उल्लु (मूर्ख) की तरह बकता फीरता है, किसीको मारता है, और निर्लज हो जाता है. क्रोधी मनुष्य मत्तवाले—भंग गांजा पीनेवाले मनुष्य की माफीक बेशुद्ध होकर अपने जीवसे भी प्यारी वस्तुको तोड-फोड-जला देता है और फीर पश्चाताप करता है.

क्रोध है सो विष से भी विशेष खराब है. क्यों कि विष खानेसे तो एक ही दफा मृत्यु होती है; परन्तु क्रोधरूपी विषके सेवन से तो अनंत जन्म—मरण करने पडते हैं. इस लिये क्रोध महा दुःखदायी कहा जाता है. और इस लिये ही क्रोध का दूसरा नाम, गूसा, (गू=विष्टा+सा=सरीखा) कहा जाता है.

क्रोध से बहुत ही दुर्गुण उत्पन्न होते हैं. जैसे कि अव्वल तो क्रोधी मनुष्य कृतघ्नी होता है; अर्थात् दूसरे

के किये हुए अनंत उपकार को भूल के उस का शत्रु बन जाता है; इस लिये क्रोधी का कोइ मित्र नही हो सकता है. श्री 'दशवैकालिक' सूत्र के अष्टम अध्ययन में कहा है कि "कोहो पीइं पणासेइ. " अर्थात् "क्रोध से प्रीतिका नाश होता है. "

क्रोधी मनुष्य जमी हुइ बातको, क्षणमात्रमें बिगाड देता है. अति ही प्रचंड क्रोधाग्निसे जला हुआ मनुष्य कुरूप और सत्वहीन बन जाता है और कितनीक वक्त तत्काल मृत्यु भी निपजाता है.

एक क्रोध रूप अवगुन से सर्व सद्गुण नष्ट हो जाते हैं; सत्कार नहीं मीलता है; क्रोधीका मन स्थिर नही रहता है; और बुद्धि भी मंद हो जाती है. एक दुर्गुणसे कितने नुकशान होते हैं !

क्रोध-कटककी संख्या !

क्रोधके भांगे इतने हैं की सुनते ही मनुष्य डर

पांव ! क्रोधके थोडे बहुत १३०० (तेरासो) भांगे होते हैं ! ! यथा-(१) अनन्तानुबन्धी क्रोधः-जीसका अन्त नहीं एसा बंधन करनेवाला क्रोध. जैसे पर्वतकी राइ (तराड-त्रूट) पडी हुइ पीछी कभी मीले नहीं; ऐसे अनन्तानुबन्धी क्रोधी मनुष्य जीससे टंटा करे उससे जावजीव पर्यंत बोले नहीं और मनमें रोष (द्वेष) छोडे नहीं. ऐसी कषाय मनुष्यको जहां तक रहती है वहां तक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती नही. है, और इस कषाय में मर जाय तो नरकगामी होता है. (२) अप्रत्याख्यानी क्रोधः-जैस पृथ्वीमें पडी हुइ राइ [तराड-तूट] पानी वरसनेसे मील जाती है, ऐसे ही अप्रत्याख्यानी क्रोधवाला मनुष्य जीससे लडाइ करे उससे १२ महिने तक बोले नहीं; फीर अति सख्त उपदेश लगे तब नम जाय अर्थात् संवत्सरीके दिन तक भी 'खमतखामना' करले. ऐसी कषाय रहे वहां तक श्रावक धर्म की प्राप्ति होती नहीं है और इस कषायमें मरनेवाला मनुष्य

तिर्यचगामी होता है. [३] प्रत्याख्यानी क्रोधः-जैसे वालू [रेती] में पडी हुइ (तराड-त्रूट) हवा चलनेसे मील जाती है; ऐसे ही प्रत्याख्यानी क्रोधवाला मनुष्य जीससे लडाइ करे उससे चार महिने तक रोष रखे, फिर उपदेश सुनके चौमासीको भी 'खमतखामना' कर ले. इसको साधुपना की प्राप्ति नहीं होती है. और इस कषायमें मरने से मनुष्य गतिमें जाता है (४) संज्वलनका क्रोधः— जैसे समुद्र में जलकी वेल [भरती] आनेसे अंतमे लकीर [चिन्ह] पड जाती है, फिर १५ रोजमें दुसरी वख्त पानी आनेसे वह मीट जाती है; ऐसे ही संजलनका' क्रोध वाला मनुष्य जीससे लडाइ करे उससे १५ रोजमें अवश्य 'खमतखामणा' कर ले. इस कषाय वाले को केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है और ऐसी कषायमें मरेतो देवगति प्राप्त होती है. (५) 'मैं क्रोध करता हूं सो अच्छा नहीं है' ऐसा जान कर भी जो क्रोध करे (६) क्रोधका फलकी अज्ञानतासे क्रोध करे. (७) क्रोधको

फल कुछ नहीं जाने ऐसी स्थिति में जो क्रोध करे (८) लडनेका अर्थ तो समजे परन्तु दुसरे लोक बोले ऐसे आप भी बोलके क्रोध करे. [९] आपके लिये क्रोध करे (जैसे कि, अमुक मनुष्यने मेरा नुकसान किया है. (१०) परके लिये क्रोध करे (जैसे कि, अमुक मनुष्यने मेरे स्वजनादिक का नुकसान किया है.) (११) आप और पर दोनों के लिये क्रोध करे (१२) बिना कारन क्रोध करे. (स्वभाव से ही क्रोधी होवे.) (१३) उपयोग सहित क्रोध करे. (१४) उपयोग रहित क्रोध करे. (देवादिक के योग से) (१५) कुछ उपयोग सहित और कुछ उपयोग रहित (भ्रमित चित्त से) क्रोध करे. (१६) 'ओघ संज्ञा' से क्रोध करे (अर्थात् देखादेखी क्रोध करे.)

इस तरह १६ प्रकार क्रोध के हुए; इन को २४

दंडक * और पच्चीसवा समुच्चय जीव; इन २५ ठीकाने में १६ प्रकार का क्रोध लगा है. इसलिये २५×१६= ४०० प्रकार हुइ.

और यह जीव क्रोध के पुद्‌गल को ६ प्रकार से बांधता और खपाता है:—(१) 'चूणे' अर्थात् क्रोध के दलो को इकठे करे; (२) 'अवचूणे' अर्थात् इकठे कीये हुवे दलीयें को जमावे; (३) बंधे अर्थात् जमे हुवे दालियें का बंध करे; (४) 'वेदे' अर्थात् बंधे हुए पुद्गल को आत्म प्रदेश और कर्मप्रदेश कर वेदे (भोगवे); (५) 'उदेरे' अर्थात् ज्यों ज्यों कर्म वेदता है त्यों त्यों उस की उदेरणा होती है; और (६) 'निर्जरे' अर्थात् कीतनेक भव्य प्राणी तप से और पश्चाताप से क्रोध के दलयीं को निर्जरे [खपा देवे].

* (१) सात नरकका १ दडक [२—११] दश भवनपति के १० दडक. (१२—१६) पाच स्थावर के ५ दंडक. [१७—१९] तीन विकलेन्द्रिय ३ दडक. (२०) तिर्यच पंचेन्द्रिय का १ दडक. (२१—२४) मनुष्य-वाणव्यंतर, ज्योतिषी-वैमानिक चार के चार दडक.

यह ६ बोल गतकाल आश्रिय, ६ वर्तमान आश्रिय और ६ भविष्यकाल आश्रिय: सब मीलके १८ भेद हुए. यह १८ निज के आश्रिय, और १८ परके आश्रिय यों ३६ भेद हुए. यह ३६ भेद, २४ दडकपे और पच्चीस में समुच्चय जीवपे लगे है; इसलिये ३६×२५=९०० भेद हुए.

यह ९०० और पहिलेके ४०० मीलके कुल १३०० भेद क्रोध के हुए. अब बिचारीए, जिस राजा के पास १३०० सुभट है उस राजा की प्रबलता कीतनी जबर हो सकती है?

क्रोध-कटक का संहार करने की युक्ति-

ऐसा जब्बर क्रोधका कटक है तो भी युक्ति से इसका भी संहार हो सकता है. इस युक्ति का नाम 'क्षमा' है. दशवैकालिकासूत्र के ८ वे अध्ययन में कहा है." उवसमेण

हणे कोहं"* अर्थात् उपसम (क्षम] से क्रोधका विनश करना. और उत्तराध्ययन के २९वे अध्ययन में भगवानने सत्य फरमाया है की—" खंतीएणं परिसहं जणयइ. अर्थात् "क्षमावान होने से परिसह सहन हो सकते हैं.

पृथ्वी को कोइ खोदते हैं, कोइ इसपर मलमूत्र डालते हैं, तो भी पृथ्वी सबको माता तुल्य आश्रय देती है; ऐसा क्षमावान—उदाराचित्त होना चाहिये.

ऐसा क्षमावान होने के लिये सिधा विचारने का स्वभाव आवश्यकीय है. प्रत्येक शब्द [भला किंवा वुरा] और प्रत्येक वनाव [भला किंवा वूरा] का ऐसा सीधा अर्थ करना चाहिये की जिस से तिलमात्र भी खेद न होवे. इस लिये यहां मैं कितनीक चावी• कूंज्जी [Keys] वताता हूं.

समजो कि आपकु कीसीने गाली दी, उस वख्त आप को ऐसा विचारना चाहिये कि (१)

मैने इस का अपराध किया इसलिये मैं अपराधी हू.अब यह मेरे को नीच, चंडाल,ठग आदि कहता है. इस में कुच्छ अपराध नहीं है, क्योंकि यह तो मुझे शिक्षा देकर शुद्ध करता है. इस लिये यह मेरा उपकारी है." और जो मंद कषायी जीव होवे तो शीघ्र मेव गाली देने वाले के पास जाकर नम्र हो कर कहे कि "भाइजी! मेरा अपराध क्षमा करो; इत्यादि";

[२]" मैने इस का अपराध नहीं किया है तो भी यह मुझे गाली देता है: ऐसा अज्ञानी जीव है. अज्ञानी जीवपे क्रोध करना मुझे उचित नहीं; परन्तु अज्ञानी की तो दया करनी चाहिये--इस को भूल से बचाना चाहिये."

ऐसा विचार के उस की पास जाकर नम्र वचन से बोलना कि, "भाइजी! मुज से आप का कुच्छ अपराध हुआ होगा तो क्षमा करनाजी." इत्यादि कह

के शांत करना. अंकुश से बडा हाथी वश हो जाता है आर पानी से अग्नि शांत हो जाती है तो फिर नम्रता से—दीनता से शत्रु शांत हो कर वश हो जावे इसमें क्या आश्चर्य ही है? जैसे मनुष्य हस्तीको पकडते है और पीछे उस को मरजी मुजब चलाते हैं ऐसे ही अव्वल तो शत्रुको नम्रता से वश करना और पीछे उस का दोष बता के शुद्ध उपदेश करना,

(२) "अमुक मनुष्य मुझे गाली देता है इस से मेरा कुच्छ नुकसान नहीं है, बोलने वाले का मुख थक जायगा. तब आप ही चुप रह जायंगा उत्तर * देकर मुख को निरर्थक श्रम देनेकी क्या जरुर है? कुत्ता का स्वभाव है की काटना परन्तु क्या मनुष्यका यह कर्त्तव्य

---

* दीधी गाली एक है. पलट्या गाली अनेक;
जो गाली देवे नहीं, तो रहे एककी एक

कोइ अपन को गाली दे, ओर अपन इस को सहन कर लेवे, तो वह ही गाली [illegible] है, परन्तु उस ने एक दी, दूसरे ने दो दी, ऐस अनेक गाली हो [illegible] है

है की—वैरके लिये कुत्ते को काटना ?"

(४)"अमुक मनुष्य मुझे चंडाल-दुष्ट-मूर्ख'आदि शब्द सूनाता है, जो मुझे पूर्व भवका स्मरण कराता है. क्यों की पूर्व भव में मैंने चाण्डाल के कृत्य, मूर्ख के कृत्य, दुष्ट के कृत्य बहुत ही कीये हैं. यह तो मेरा उपकारी है कि मुझे याद कराता है कि 'रे मूर्ख ! अनेक वख्त ऐसा जन्म--मरन के दुःख सहन करने से भी तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं आइ ! इस प्रकार हरेक बात सीधी लेना. समता में बडा भारी चमत्कार है. एक कविने कहा है कि:---

"सीधी साही मोक्ष दे. उलटी दुर्गत देख;
" अक्षर तीनकु ओलखो, दोय लघु गुरु एक."

दो लघु और एक गुरु अक्षर वाला शब्द 'समता' है; इसकु बराबर--सीधा पढने से 'समता' हुइ, की जो

मुक्तिदाता है; और उन ही अक्षरों को उलटा पढने से 'तामस' शब्द हुआ, जीससे दुर्गति होती है.

(५) "जो ज्ञान दृष्टि से विचार करुं तो मेरा जैसा बुरा (खराब) कोइ नहीं है. जो आदमी मुझे बुरा कहता है वह बुरा नहीं है परन्तु बूरा (सक्कर) जैसा है; क्युं की मुझे पूर्व भवका स्मरण कराता है."

"बुरा बुरा सब कों कहे, बुरा न दीसे कोय;
"जो घट शोधू आप को, तो मो सम बुरा न कोय. ॥१॥
'बुरा बुरा सब तुज कहे, तूं भला कर मान;
बूरा मीठा होत है, सबी वणे पकवान;" ॥२॥

(६) कीतनीक गालीओं का भावार्थ विचारने से आशिर्वाद जैसा मालूम होता है. दृष्टांतः—(१) 'तेरा खोज जावे' ऐसी कोइ गाली देवे तो विचारना की, मेरा खोज तो जब मैं मोक्ष जाउंगा तब जायगा. [२]

'कर्महीन!'या'अकर्मी !' ऐसी कोइ गाली देवे तो विचारना की-यह मुझे सिद्धपद देता है; क्युं की जीस के कर्म क्षय होते हैं वही कर्महीन किंवा अकर्मी किंवा भगवान बनता है. (३) यदि कोइ 'साला' कहे तो विचारना की, उस की स्त्री अपनी भगिनी हुइ; पवित्र पुरुषों को तो पर स्त्री से भगिनी भाव ही होते हैं!

(७) "जैसी जिस के पास वस्तू है, वैसी वो देवेगा, बिचारा जास्ती कहां से लावे ? हलवाइ की दुकान पर मीठाइ मीलती है, और चमार के पास जूते मीलते हैं."

(८) "जो शब्द को मैं गाली मानता हूं उसे हृदय में क्यों ग्रहण करना चाहिये ? बुरी चीज को तो सब लोग छोड देते हैं, ग्रहण नहीं करते हैं,"

[९] ज्ञानी पुरुष दूसरे के दुर्वचन सुन के यों विचारे की—"यह जो कहता है वे दुर्गुण मेरी आत्मा मे

या नहीं ?" यदी वे दुर्गुण अपनी आत्मा में होवे तो
चारे की—"अहो ! हकीम की माफीक इसने मेरी
ाडी प्रमुख बिन देखे ही मेरी आत्मा का दर्द मुझे बता
या; अब तो इस दर्द को दूर करने का उपाय मुझे लेना
हिये." यदि वो दुर्गुण अपनी आत्मा में न होवे तो
वारना की—"मेरी आत्मा में तो वह दुर्गुण नहीं है
क्या इस के कहने से आ जायगा ? क्या रत्न को
च कहने से कांच हो जाता है? अब मैं जो इसपे
करूं तो मेरा जैसा अज्ञानी दूसरा कौन? ज्ञानी
मूर्ख में क्या भेद ? उत्तराध्ययन जी के दूसरे
यन में कहा है कि 'सरीसा होइ बालाणं' अर्थात्
ानी ही बराबरी करते हैं.

[१०] " वचन सहन करना इतना भी परिसह
स्वतंत्रपने से नहीं सह सकता हूं, तो नरकतिर्यचादि
मारताड कैसे सहन होगी ? "

(११) किसी वक्त कोइ मनुष्य अति द्वेषभाव करके मुष्टी—लात—लकडी इत्यादि से प्रहार करे तो ज्ञानी पुरुष ऐसा विचार करे की—"इससे मेरे किसी जन्म का वैर संबंध होगा. वह ऋण में से मुक्त होना मुझे लाजीम है." श्री उत्तराध्ययन सूत्र (अध्ययन४) में कहा है की-"कडाण कम्माण न मोक्खोअत्थि' अर्थात किये हुवे कर्म भोगवे बिना छूटका नहीं होता.' इस वक्त में पूर्वभव का वैरका ऋण चूकाने के लिये समर्थ हूं, तो खुशी की साथ चूकाना चाहिये. परन्तु क्रोध करके नविन ऋण नहीं करना चाहिये."

दृष्टांत:--एक कृषिकार को शाहुकार के सो रूपैये देने है. शाहुकार मांगने को आया. अब जो वह कृषी-कार उस साहुकार का आदरसत्कार करके कहे की, शेठजी! मैं गरीब हूं; मेरी पास १०० रूपैये तो नहीं हैं, परन्तु ७५ हैं. इतने ले कर मेरे सरीखे गरीबप

कृपा करके पावती खत दो." ऐसा सुन के शाहुकार प्रसन्न होता है और २५ रुपैये कमती लेकर फारकती दे देता है. परन्तु जो करजदार करडाइ करके कहे की, "जा, नहीं देता. तेरेसे बने सो कर ले!" तब वह शाहुकार अर्ज-फिरीयादी कर ब्याज सहित रुपैये लेता है. इस लिये जो देना है सो नम्रता से चूकाना चाहिये.

(१२) ज्ञानी पुरुष ऐसा विचार करे कि—"यह जो मारता है वह शरीर को मारता है. और पुद्गलमय पींड (शरीर) का तो कभी न कभी बिनाश होने वाला ही है. मुझे मारने की और तारने की शक्ति मेरे सिवाय अन्य किसीकी नहीं है; क्यो की मैं तो अजर-अमर-अखड-अविनाशी हूं."

(१३) ज्ञानी पुरुष ऐसा विचार करे की "मैंने

अनंत पुण्योदय से जो जैन धर्म पाया है और जैनागम (शास्त्र) का सार जो समता (क्षमा) रूप धर्म धारन किया है वह धर्म पूरा साधा कि नहीं, उस की पूर्ण परीक्षा का यह वक्त आ पहुंचा है. यह मारनेवाला परीक्षक है. सो हे प्राणी ! अब तूं तेरी अच्छी तरह से परीक्षा दे; पीछा हटे मत. यदिऐसा परीक्षा का प्रसंग नहीं आता तो क्या खात्री होती की भगवान का पाहिला फरमान (' क्षमावंत होना ') तूं बराबर पाल सकता है किंवा नहीं ? "

(१४) "नर्क में परमाधामी के हाथ से मुद्गल का मार मैने सहन किया था, देवलोक में वज्रका मार इत्यादि परवश होकर सहन किया था; तो इतने अल्प दुःख से क्यों कायर होकर भगवंत का फरमान ताडके दुर्गति का अधिकारी बनू ? "

(१५) " हे सुख का अभिलाषी आत्मन् ! तू

चंदन की तरह शीतल स्वभावी हो ! सागर की माफीक उदारचित्त हो ! पुष्प की माफीक दुःख देने वाले को भी सुखकर हो ! तेरा क्षणभंगुर शरीर के विनाशसे दूसरे प्राणी को सुख होता है तो होने दे; और अन्य जनो का सुख देखकर तूं सुखी बना रहे."

[१६] "यदि कृतघ्नी और द्वेषी पुरुष इस जगत् में नहीं होता तो तेरे जैसे संत पुरुष की खबर ही क्या पडती ? इस लिये कृतघ्नी और द्वेषी पुरुष तो तेरे गुन के प्रकाश करने वाले उपकारी जीव हैं."

[१७] "जो समर्थ होके क्षमा करे तो उसकी बलीहारी है, उस को धन्यवाद है ! क्यों की निर्बल तो वैर ले सकता ही नहीं है. और जो सबल होने पर भी वैर न लेवे और क्षमा गुन में कायम बना रहे तो उस को बहुत ही धन्यवाद है. वैर लेना सहेल है; क्षमा करना मुश्कील है."

[१८] "सत्पुरुष को लाजीम है की अपने महान

प्रतापी पिताका अनुकरण करना. अपने पिता श्री महावीर प्रभु एक रात्री एक ग्राम के बाहिर ध्यान में रहे थे. वहां गोपालक लोक [गोवालीयें] गायों को चराने के लिये आये. और खडा हुवा आदमी को देख के बोले की; हम रोटी खाने जाते हैं, तू हमारी गायों को देखना. प्रभु तो ध्यानग्रस्त थे, इस लिये सर्व गायों इधर उधर चली गइ. गवालीये आके बहुत गुस्सा करने लगे. और प्रभु को मारने लगे. तब शक्रेन्द्रने आके गाइयों ला दी और प्रभु से कहा की, 'आप को बहुत ही संकट पडेंगे इस लिये मै आप की साथ रहुंगा.' प्रभुने उत्तर दिया की, 'हे इन्द्र ! मेरे कीये हुवे कर्म में ही भोगूंगा.'

"प्रभु की शक्ति इतनी थी की वे दृष्टि मात्र से जला के भस्म कर सकते परन्तु अरिहंत प्रभु जैसे बल से सूरे होते हैं वैसे ही क्षमा से भी सूरे होते हैं. 'क्षमा सूरा अरिहंता' कहे जाते हैं.

"ऐसे क्षमासागर प्रभु का धर्म और शरण पाया फीर भी क्रोध करना क्या मुझे उचित है?"

क्षमाकी प्रशंसा.

क्षमा है सौ इसलोक और परलोक में परम सुख की दाता है. संसार समुद्र से तारनेवाली है. ज्ञानादि रत्नत्रय को धारन करनेवाली है. अनेक गुनो के समुहो को प्रगट करने वाली है. चिंतामणी—काम-कुंभ—पारस मणी--कामधेनु इत्यादिक से भी अधिक सुखदायिनी है. मन को उज्वल करनेवाली है; तन की माता तुल्य रक्षा करनेवाली है. वांच्छित कार्य को पूर्ण करने में क्षमा महा मोहिनी मंत्र है. क्षमावंत मनुष्य कीसी का भी बुरा चिन्तवता नहीं है और बुरा करता भी नहीं है, इस लिये सारी दुनिया में उस का कोइ वैरी (शत्रु) नहीं होता है.

इस जगत में जो जो शुभ गुन हैं उन सब को धारन करनेवाली क्षमा ही है; इस लिये कहा है की "क्षमया स्थाप्यते धर्म" अर्थात् "क्षमा ही धर्म रहने का स्थान है."

क्षमा सरीखा तप दुसरा नहीं है. चाणक्यनीतिमें कहा है कि-"क्षमा तुल्यं तपो नास्ति" श्री हुकम मुनिकृत "अध्यात्म प्रकरण" में कहा है की "एक मनुष्य ६६ क्रोड उपवास करे और दूसरा मनुष्य समर्थ होने पर भी एक गाली सहन कर ले तो दोनों में गाली सहन करने वाले को ज्यदा फल होता है."

इस लिये आत्मसुखार्थी प्राणी को सदा सर्वथा क्रोध का त्याग और क्षमा का आचरण करना अवश्य जरुर का है."

अब में युरोपीयन विद्वानो के भी थोडे वचना-

मृत लीखूंगा, की जीस में थोडे शब्द और बहुत ही गांभीर्य है:—

Anger BEGINS with FOLLY, and ENDS with REPENTANCE——Maunder's Proverbs.

"क्रोध के आदि में मूर्खता है और अंत में पश्चाताप है."—मोन्डर.

९७

An angry man OPENS his MOUTH and SHUTS his EYES,——Cato

"क्रोधी मनुष्य मुख खुल्ला रखता है और नेत्र बंध करता है"—केटो.

९८

When Passion enters at the fore gate, Wisdom goes out at the postern——Fielding's Proverbs.

"जब अगले द्वार से क्रोध प्रवेश करता है तब पीछले द्वार से शाणपण भाग जाता है."—फील्डींग.

९९

No man is free who does not command him-self——pithagoras.

" वह आदमी स्वतंत्र नहीं है, की जो अपनको अपना तंत्रमां नहीं रखता हे. "—पीथागोरस.

An angry man is again angry with himself when he returns to reason.————publius Syrus

क्रोधी मनुष्य जब शांत होते हैं तब फीर आपसे क्रोध करते हैं. "—पब्लीअस साइरस.

Anger is certainly a Kind of baseness as it appears welein the weaKness of those suljects in whom it reigns; children old folKs' sicK folKs ———Lord bacon

"गुस्साका साम्राज्य बहुत करके बाल, वृद्ध और बिमारपें चलता है, इस लिये समझा जाता है की गुस्सा है सो निर्बलताका चिन्ह है और नीचता है "

—लॉर्ड बेकन.

Forgiveness is the noblest revenge.

"क्षमा है सो सबसे उमदा प्रकारका वैर है."

whotoever shall smite thee on thy right cheek' tern to him the other also ——— Matt V. 39.

"यदि तुझे कोइ दाये गालपे तमाचा मारे तो बाया गाल भी उस-की तरफ करना"—बाइबल.

Bless them that curse you ——— Matt. V 44

"जो तुजे शाप दे उस को तू आशिर्वाद दे"-बाइबल.

A soft tongue breaketh the bone —Prov. XXV 15

"सुंवाली जबान हड्डी भी तोड डालती है."

Forgive and ye shall be forgiven —Luke, VI. 37

"क्षमा कर: तुझे क्षमा दी जायगी."-बाइबल

परमपूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी महाराज विरचित धर्मतत्त्व संग्रह का.

क्षमा धर्म नामक प्रथम प्रकरण

समाप्तम्

प्रकरण दूसरा-मुत्ति (मुक्ति) संतोष.

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो मोहो, हयो जस्स न होइ लोहो ।
तण्हा हया जस्स नहोइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइ ॥८॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र अ० ३२

अर्थ-जिस के ही दुःख का नाश हुआ है कि जिस के मोह न हो, और जिस के ही मोह का नाश हु' ा है कि जिस के लोभ नहो, और जिस के ही लोभ का नाश हुआ है कि जिस के तृष्णा न हो, और जिसने तृष्णा का नाश किया है वे ही अकंचन (निष्परिग्रही) है

जिस के लिये मनुष्य भूख-प्यास, ठंड-ताप औ. मारताड आदि सहन करते हैं, पर्वत पे चड जाते हैं. खाड में उतर जाते हैं, जंगल झाडी में भटकते फिरा

हैं, विवेक बुद्धि की विरुद्ध होकर चोरी और खून भी करते हैं, जिस के लिये यह सब अनर्थों मनुष्यों कर रहे हैं उसे कौन नहीं जानता है ? वह दुर्गुण लोभ ही है, की जो देखते हुए मनुष्य को अंध बनाता है. लोभ के सबब से पिता पुत्र को और पुत्र पिता को इत्यादि स्नेही सम्बन्धीयों परस्पर दगा देते हैं. लोभ के सबब से राजा प्रजा के शिरपे असह्य कर (टाक्ष) डालता है और प्रजा का प्रेम खोता है. लोभ के प्रताप से परमपूज्य मुनि भी निन्दा के पात्र हो जाते हैं.

लोभ और विषय यह दो चीज ऐसी है की ज्यों ज्यों उस को ज्यादे तृप्त करो त्यों त्यों संतुष्ट होने के वदल ज्यादे खोराक मंगती है. सुंदरदासजीने ठीक कहा है कीः—

जो दश वीश पचास भये शत होत हजार कि लाख मगेगी;
कोटी अरब्ब खरब्ब असंख्य, धरापति होने की चाह जगेगी;
स्वर्ग पाताल को राज करो तृष्णा-अग्निकी अति आग लगेगी;
'सुंदर' एक संतोष विना, शठ ! तेरि तो भुख कबु न भगेगी !

सच है; एक संतोष बिना मनुष्य की भूख कभी शान्त होने वाली नहीं है. श्री 'उत्तराध्ययन' सूत्र आठवे अध्ययन में भी फरमाया है की-जहा लाहो तहा लोहो। लाहा लोहो पवड्ढइ ॥

अर्थात् ज्यों ज्यों लाभ होता है, त्यों त्यों लोभ की वृद्धि होती जाती है.

जब 'पाइरस' बादशाह 'इटली' देश जीतने के लिये तैयार हुआ था तब उस को 'सीनीआस' नाम का फीलसुफ (तत्त्ववेत्ता) ने पूछा की, आप कीधर जाते हो ?

राजाः—इटली' जीतने के लिये.

फीलसुफः—'इटली' हस्तगत होने से क्या करोगे ?

राजाः—'आफ्रिका' हस्तगत करेंगे.

फीलसुफः—पीछे ?

राजाः—पीछे आराम और आनंद लेंगे.

फीलसुफः—तो अभी आराम और आनंद क्यों नहीं लेते हो जी ?

परन्तु, नहीं; जो लोभी है उस के नसीब में ही दुःख और तकलीफ है, इस लिये वो अव्वल से संतोष कर सकताही नहीं है.

> सुवण्ण रुप्पस्सउ पव्वयाभवे, सियाहु केलाससमा असंखया ॥ नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि ॥ इच्छाओ आगास समा अणंतिया ॥ ४८ ॥ उत्तराध्ययन ९

भावार्थ. यदि लोभी मनुष्य को मेरु पर्वत जीतने बडे सोना-रुपा के असंख्य ढग कर के कोइ देवे तो भी उस की तृष्णा किंचित्मात्र भी तृप्त न होगी; क्यों कि धन तो असंख्याता है परन्तु तृष्णा तो अनंती है. श्री 'महाभारत' के आदि पर्व में 'ययाति' ने कहा है:-

> न जातु कामः कामाना मुपभोगेन शाम्यति ।
> हविषा कृष्णवर्त्मेव पुनरेवाभिवर्धते ॥

यत्पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
एकस्यापि न पर्याप्तं तस्मात्तृष्णां परि त्यजेत् ॥१॥
यादुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः ।
यो सौ प्राणांतिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥

अर्थात्–"ज्यों अग्नि में घृत डालने से अग्नि प्रज्वलित होती है त्यों काम का उपभोग करने से काम शांत नही होता है, विश्व की सब दौलत, धान्य, पशु, स्त्री आदि सब एक ही मनुष्य को मिले तो भी उस की तृष्णा तृप्त नहीं हो सकती है. इसलिये तृष्णा का त्याग करना ही श्रेष्ट है. दुर्मति वाले लोग तृष्णा का त्याग नहीं कर सकते हैं. ऐसे लोग ज्यों ज्यों वृद्ध होते जाते हैं. त्यो त्यों तृष्णा कुछ वृद्ध नहीं होती है परन्तु जैसे कोइ प्राण घातक दर्द प्राण की साथ ही नष्ट होता हैं ऐसे ही तृष्णा मनुष्य की साथ ही मरती है. इसलिये उस का तो त्याग करने से ही सुख मिलता है."

यदि आप शहर की बाहिर खुल्ले मैदान मे जाके खडे रह कर देखोगे तो-आकाश आप से कोस दो कोस दूर दिखेगा; परन्तु जब आप दो कोस जा पहुंचेगे तब और भी दो कोस दूर आकाश दिखेगा; यों कितने भी दोडे तो भी आकाश का पार नहीं आवेगा. इसी तरह तृष्णा भी अपार है की जिस का पार संतोषाबिना किसीभी प्रकार से नहीं हो सकेगा.

श्री' ठाणांग' सूत्र के आठवे ठाणे में आठ प्रकरा की खाड कही है. यथा-स्मशान की, समुद्र की, पेट की, अग्नि की, घर की, मोक्ष की, आकाश की और तृष्णा की, यह खाडों कदापि कोइने भरी नहीं और कोइ भरेगा भी नहीं.

क्रोध की माफीक लोभ की सैन्य में भी १३०० योधे हैं. इसलिये लोभभी एक महा बलवान शत्रु है. तो भी युक्तिसे इस का पराजय हो सकता है.

तृष्णा पराजय के लिये कूंजीयाँ (Key

(१) लक्ष्मी की तृष्णा जिस को ज्यादे हो
को विचारना चाहिये की-क्या धन में ही सब
आरहा है ? क्या ज्यादा धन से ज्यादा सुख होता है,
सच्च बात तो यह है कि:—

नवी सुही देवता देवलोए, नवी सुही पुढवीपइ राया।
नवी सुही सेठ सेनावईए, एगंत सुही साहू वीयरागी॥

अर्थात्, देवलोक के देवता जिन को रहने के लि
रत्नमय विमान है, आनंद के लिये अति सुंदर देवी
हैं और जो मरजी मुजब रूप कर सकते हैं; वे भी सुख
नहीं है; क्यों की सब से ज्यादा तृष्णा देवता में रहती है
इस लिये वे हरहमेश अन्य देवों की समृद्धि देख क
ईर्षावंत होके भस्मीभूत होते हैं. पृथ्वीपति राजा जि
की पास दास-दासी-नौकर चाकर-सैन्य-लक्ष्मी आदि स
हे वे भी सुखी नहीं है; क्यों की उन को स्वजन औ

स्वराज्य के रक्षण की चिंता और सगा स्नेही का दगाका डर इतना है की वे घडीभर सुख से सो सकते भी नहीं है. इसी तरह शेठ और सेनापति को भी सुख नहीं है. शीर्फ रागद्वेष से दूर रहने वाले साधुजी ही सुखी हैं, की जिन को कोइ तरह की तृष्णा और चिंता नहीं हैं. धन तो प्रायः सदा ही दुःखदायक होता है.

> वित्त मार्जिता दुःखं, मार्जितानांच रक्षणं ।
> आयदुःखं व्ययदुःख, धिमर्थं दुःख साधनं ॥ १ ॥

धन उत्पन्न करते भी दुःख होता है, धन हुवे बाद रक्षण करने में भी दुःख होता है, यों आता हुवा भी धन दुःख देता है और धन का नाश होने से भी दुःख होता है, इसलिये हे मनुष्य ! तू जान कर क्यों दुःख प्राप्ति का साधन करता है ?

(२) धन कुच्छ खाने में-पहरने में काम नहीं आता

है. रुपैया को घिस कर पीनेसे कुछ दर्द नहीं मीट
है. लक्ष्मी से कुछ बुढापना मिटके युवावस्था प्राप्त न
होता है, और धन से मृत्यु से भी बच सकता नहीं है

(३) ऐसा नहीं है की धनवान तो चांदी-की रो
सोने की तरकारी मोतीकी चटनी खाता होवे और निर्धन मी
खाता होवे. परन्तु गरीब जन जो अन्न खाते हैं इससे अच्छ
तरह से पुष्टी मीलती है. प्रायः निर्धनों का शरीर धनिव
से बहुत पुष्ट होता है.

(४) 'कीडी को कण और हाथी को मण' मिला ह
रहता है. नाहक इधर उधर दोड धाम करके आत
शाति गमाने से क्या होता है ?

(५) महा दुःख से सम्पादन किया हुआ द्रव
कायम रहता नहीं है. चाहे उतने बंदोबस्त करो तो भ
जब उसका काल परिपक्व होगा तब आप से ही चला जायग

(६) महम्मद घीजनवीने नगरकोट का मंदीर लुट के २० मण झवेर, २०० मण सुवर्ण, २००० मण रुपा, और अगणित रोकड दाम लीया था. इस के सिवाय और १६ हुमले करके हिन्दुस्तान से बहुत ही धन लुट लेगया था. वह मरने को तैयार हुवा तब सब धन का एक बडा भारी ढग बनाके उस के ऊपर जाके बैठा और एक बालक की माफीक रोने लगा की "हाय! इस धन में से एक कौडी भी मेरी साथ नहीं चलेगी!" इस तवारीख से समझना कि-धन कीसीकी साथ नहीं चलता है. परन्तु जो उमदा गुन और पुण्य प्राप्त कीया होगा वोही साथ चलेगा.

(७) आप से जो निर्धन हैं उन की स्थिति का खयाल करो. आप से वडे हैं उन की तकलीफ का विचार करो. पीछे कहो की आप सुखी हो या नहीं ?

(८) संतोष है सो नीति का सूर्य है. सूर्य सृष्टि के

प्रकाश देनेवाला है और संतोष है सो मनुष्यों को सुख और आनंद देनेवाला है.

(९) तोफानी समुद्र में तेल डालने से शांत हो जाता है, ऐसे ही चिंता से भरपूर इस जगत में 'समता' सब दुःखों को शांत करती है.

(१०) मीजाजी कुमारिका और लक्ष्मी दोनों का स्वभाव एक ही है. जो लोग उस के पीछे उल्लु बनके फीरते हैं उन को बो नहीं स्वीकारती है; और जो उस की दरकार नहीं करते हैं उन की पास आप ही जा पहुंचती है.

(११) लक्ष्मी का लोभ मनुष्य को धर्म से, दानसे, दया से, भावना से, सदाविचारों से दूर रखता है और विमुख बनाता है, दृष्टिवाले को द्वेषी बनाते हैं.

(१२) शरीर पोषण के लिये अन्न की जरूरत है, परंतु ज्यादा खाने स दर्द होता है. संसारी को पैसा

की जरूर है परंतु पैसा का लोभ नुकशानकारक है.

(१३) धनाढ्यों के * घर में जीतने कुकर्म होते हैं उतने अन्य कोई स्थल में नहीं होते होंगे, गणिका सेवन, परस्त्री तथा पर पुरुष सेवन अभक्ष्यभक्षण, जूवा, क्रोध, आदि दुष्ट काम बहुत धनवान के उतने कीधर भी नहीं होते होंगे.

(१४) क्रीश्चिअन धर्म का पोपने (धर्माध्यक्ष) स्वर्ग की टीकीट देने का ढोंग खडा किया इस का सबब पैसा ही था; निःस्पृही महात्मा शंकराचार्य अनुयायी लोगों को मारताड करने लगे उस का सबब पैसा ही था; जैन

---

* "Gold glitters most where virtue shines no more
"As stars from absent suns have leave to shine"

'डॉक्टर यंग' कहता है कि ज्यों सूर्य की गेरहाजरी में ताराओ को प्रकाशने की परवानगी है, त्यों सद्गुण की गेरहाजरी में सुवर्णक भी बहुत प्रकाश रहता है. मतलब जीधर सुवर्ण है उधर सद्गुण क्वचित् ही दृष्टिगोचर होते है.

साधु जो अकिंचन कहलाते हैं उनमें भी कीतनेक तृष्णा केवश होकर दासानुदास बनते ह और कितनेक भेषधारीयें श्रावक लोगों की पास रुपैये जमा रखते हैं. अब कहीये ! पैसा कैसी खुवारी करता है ?

(१५) जब किसी मनुष्य को कोई वस्तु प्रिन मालुम पडती है तो उस को वह सुवर्ण का डालामाय उस के लिये प्राण तकात अर्पण कर देता है और जब प्राप्त हो जाती है तो फिर वह पीतल तुल्य तुच्छ मालुम पडती है. यों हरेक अच्छी से अच्छी वस्तु प्राप्ति की आशा में तृष्णावाला मारा २ फिरता है. प्रश्न मात्र मन का ही है ? इस लिये सुखी वही है कि-जो आशा को दबा सकता है. क्यों कि श्री मद्भागवत में दत्तगुरुने कहा है कि-' आशायां परमं दुःखं निराशं परमं सुखं. ' अर्थात् आशा ही परम दुःख और निराशा ही परम सुख है ! और भी- Contenment opens

the source of every joy-Beatie. संतोषं नंदनं.

(१६) 'सोलोमन' एक वडा भारी विद्वान और पवित्र पुरुष था. परंतु जब उसे राजा बनाया तव वह ईश्वर को भूल गया और दुःखी हो गया.

'लार्ड बेकन' ने कहा है की—,, बहुत लक्ष्मी को मत ढुंढो. परन्तु जो कुछ प्रमाणीक उद्योग से मीले उस से संतुष्ट रहो, बिचार पूर्वक उपयोग करो, खुशी से अन्य जनों को दान करो और जो कुछ रहे सो कुटुम्ब के लिये रख जाओ''

(१५) अग्रेंजो कहते है कि-CONTENTMENT IS THE TRUE PHILOSOPHOR'S STONE, अथात्-संतोष है वह तत्त्वज्ञान की कसोटीका पत्थर है अर्थात्-कसोटी से जिस प्रकार सुवर्ण की कीमत होती है तैसे ही यह मनुष्य तत्त्व वेता हैं कि वा नहीं, सइ की

कसोटी संतोष से होती है.

जिसकी पास द्रव्य है उसका कर्त्तव्य क्या है?

(१) जानना चाहिये की-धन मिलता है सो पूर्व भव में की हुइ दानादि कमाइ का फल है. कोइ मनुष्य बैठ २ कर सब धन खाजावे तो उस को मूर्ख कहा जाता है. ऐसेही जो मनुष्य पूर्व भव की कमाइ इस भव में खा जाता है और नया पुण्य उपार्जन नहीं करता है उस से भारी मूर्ख * दूसरा कोइ नहीं हो सकता है. कीसनदासजीने कहा है कि—

* , पोलोक' (PolloK) नामक विद्वान तो इतने तक कहते है की लक्ष्मी को पकड रखने वाला मनुष्य सब से, पतीत और नीच है.

But there was one in folly further gone,
The laughing stock of devils and of men;
The Miser, who, with dust inanimate
Held wedded intercourse, of all God made upright
Most fallen, most earthly, base art thou ?

मोसम समे 'किसन' कीजिये असम श्रम, बैठे क्रम क्रम पूंजी गांठकी न खाइये; काल·काल करत परत आन काल पास, काल की न आस कुछ आज ही बनाइये; काया में न आइ काइ तोलों करि ले कमाइ, आग लगे मेरे भाइ मेह कहां पाइये ?

और—

कोरी कोरी कर कोरी लाख के करोर जोरी, तोउ मार्न थोरी जाने लीजे जग लूटके; मायामें अरुज्यो पर स्वारथ न सूज्यों, परमारथ न बूज्यो, भ्रमभारथतें छूटके. जगत को देत दगे, आन जम दूत सगे, 'किसन' जो लगे वेउ ठग न्यारे फूटके; हंस अंस ऐंच लियो, अंग रंग भंग भया, जैसे वीन बजत गयो है तार तूटके !

और भी—

आगे जो ठिकाना सो तो मुल्क विराना, तहां गांट ही का खाना, दाना बैठे तिन खाना है; ताते मनमाना, पूर कर ले खजाना, अब 'किसन' सयाना, जो तु दाना मरदाना है.

२ 'लॉर्ड बेकन' कहते हैं कि—सब गुणों में दान का गुण अव्वल दरजे का है. वह ईश्वरी गुण है. जिस

मनुष्य में यह गुन बीलकुल नहीं है वो कीडे जैसा क्षुद्र और तुच्छ प्राणी है.

३ कोई अज्ञानी कहते हैं कि—यहां का सुख मीठा, आगे किन्ने दीठा?" ऐसे आदमी को समझाना चाहिये कि—देखीये! एक मनुष्य ऐसा है कि जिस की पास रहने के लिये झुंपडी भी नहीं है, खानेके लिये रोटी का टुकडा भीख मांगने से भी नहीं मीलता है, जीस की पास स्त्री—पुत्र-स्वजन-मित्रादि कोइ नहीं है और जो दर्द में डुब रहा है. दुसरा एक आदमी ऐसा है की जिस को रहने के लिये सुंदर राजमहल है. खाने के लिये स्वादिष्ट भोजन हैं, अखूट लक्ष्मी बिना श्रम ही मीली है, स्त्री—पुत्र—स्वजन—मित्रादि सब हैं इन दोनों की तफावत् पूर्व संचित पुण्य पाप की ही है.

(४) इस लिये सुज्ञ जनों को लाजिम है की भविष्य के लिये इस जन्म में कुछ दान पुण्य करना. कृपण

लोग की लक्ष्मी पुत्री तुल्य है और उदार जन की लक्ष्मी स्त्री तुल्य है. जैसे पिता पुत्री का रक्षण करता है और उस को भोगने वाला तो और कोइ मनुष्य होता है; ऐसे ही कृपण मनुष्य धन का रक्षण करता है परन्तु उस को भोगने वाला तो पुत्र- स्वजन-राजा-चोर-अग्नि-पृथ्वी जल आदि होते हैं. और उदार पुरुष अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग आपही करता है वह लक्ष्मी से इसलोक और परलोक में सुख प्राप्त करता है. अर्थात् सती स्त्री तुल्य परभव में भी लक्ष्मी उस के साथ जाती है.

धनश्चभूमौ पशवश्चगोष्ठौ, कान्ता गृहद्वारे जनाःश्मशाने॥
देहश्चितायां परलोकमार्गे, कर्माणुगो गच्छति जीव एकः ॥ ५ ॥

[५] धन धरती में रखा होगा वहां ही रह जायगा, घर–दुकान–और अश्व-रथ आदि जहां होगा वहां ही रहजायगा, स्त्री दरवाजे तक आके ठेरेगी, स्वजन स्मशान

तक साथ आयँगे, और शरीर चीता तक सोबत करेगा; परन्तु धन से, दुकानादि से, अश्वादि से, स्त्री आदि से, स्वजनसे, और शरीर जे जो कुच्छ जनसेवा सुकृत्य कराया होगा वोही साथ चलेगा.

[६] आश्चर्य है की सब से भारी कृपण भी ग्रामान्तर जाने की वक्त खाने का बंदोबस्त कर लेता है, परन्तु परभव की मुसाफरी के लिये कुछ भोजन का बंदोबस्त नहीं करता है. परभव की मुसाफरी तो जरूर करनी होगी! वहां किसी की भी बूम और वार* नहीं पहुंचती है. जो चीज साथ में रखी होगी वोही काम लगेगी. मुसाफरी कब करनी पडेगी ऐसा तथा उसके कोसांका भी ज्ञान नहीं है. इस लिये हमेशा तैयार रहना चाहिये, क्योंकी मुसाफरी शुरु होनेके बाद पश्चाताप करने से कुछ नहीं होसकता है.

---

* चार कोस ग्रामान्तर, खरची बांधे लार;
परभव निश्चय जावणो, क्षांकी बूम न वार।

उक्त कथन से द्रव्य का सदुपयोग करने का व और परभव की खरची लेने का जिस का विचार होवे वे सुपात्रों-साधुओं आदि उत्तम पात्रोंको व अनाथ अपंग संसारीयों को तथा परोपकारी संस्थाओंको दान देकर धनका सार्थक करे इन का कुच्छ उल्लेख आगे किया जाता है.

साधुको दान कैसा देना ?

साधु को अतिथि कहे हैं, क्योंकी उन के आनेकी तिथि मुकरर नहीं है. ऐसे पवित्र साधु को १४ प्रकार के दान देनेसे बडा भारी लाभ होता है. उन के नाम- (१) अन्न (२) जल (३) पक्वान्न (४) मुखवास (५) सूतके वस्त्र (६) ऊन के वस्त्र (७) रजोहरण (८) काष्ट-तुंबादिकके पात्र (९) बैठनेके लिये पाटला (१०) सोनेके लिये पाट (११) रहनेके लिये मकान (१२) बीछानेके लिये घांस-पराल.

(१३) तेल गुटिकादि औषध (१४) सूंठ—दालचीनी आदि भैषज्य *

यह १४ प्रकार के दान मुनिराज को उलट भाव से देने से परत्त संसारादि महाफल की प्राप्ति होती है.

दान के १० प्रकार

श्री ठाणांगजी सूत्र में कुल १० प्रकार के दान कहे हैं, जिस का विवेचन नीचे किया गया है.

> अणुकंपा[१] संगहे[२] चेव, ऽभय[३], कालूणिएतिय[४], लज्जाए[५] गारवेण[६] य,
> अहम्मेय[७] पुण सत्तमे, धम्मे[८] अट्ठम वुत्ते, काहीतिय[९] कयंतिये[१०] ॥

(१) अनुकंपा दानः—दुसरेको दुःखी देखके

---

* दातार गृहस्थोंको इतना भी जानना चाहिये की-यह १४ प्रकारके दान मुनिराजको देती वख्त लूण, अग्नि, ठंडा जल आदि सचित वस्तुका स्पर्श न होना चाहिये और जो चीज मुनिको देनेकी होवे सो खास मुनिके लिये बनी न होनी चाहिये.

दया लावे और अपनी शक्ति अनुसार अन्न—वस्त्रादिक देकर—साता उपजावे.

(२) संग्रह दानः—अनाथ, असमर्थ, दुष्कालसे पीडित,राजा—चोर—अग्नि आदि के त्रासले दुःखी,इत्यादिक प्राणीको सहाय करना सो संग्रह दान.

(३) अभय दानः—कोइ प्राणीका वध होता है उसको मृत्युसे छुडाना सो अभय दान.

(४) कालूणिए दानः—स्वजन मरजाने से उन के पीछे अन्नवस्त्र आदिकका दान देते हैं सो कालूणीदान.

(५)लज्जाए दानः—लज्जाके लिये दान करे सो.

(६) गारव दानः—अभिमानसे दान करे सो.

(७) अहम्म दान :—गणिका आदिको नचाके दान देना सो 'अहम्म दान' अर्थात् अधर्म दान है. इससे

कुच्छ भी पुण्य नहीं है, परन्तु कर्म का बंध होता है,

(८) धम्म दानः—साधु श्रावक सम्यक् दृष्टी जनों को दान देने से धर्म दान होता है. धर्म क्रिया के उपकरण, धर्म पुस्तकों आदि देना उस को भी धर्म दान कहते हैं.

(९) काहीतिय दानः—"इस मनुष्यने प्रथम मेरे उपर उपकार किया था, इसलिये उस को दान देना मुनासिब है" ऐसा विचार के दान देना सो.

(१०) कयंतिय दानः—भाट-चारणादिक को अपनी कीर्ति विस्तारने देवे सो कीर्ति दान.

इन १० दस प्रकार के दान में कौन से कौन से दान उत्तम हैं, कौन२से कनिष्ट हैं. और कौन २ से मध्यम हैं सो विचारने का काम पाठगण का है.

दान देनेसे भंडार खाली होता है * या नहीं उस का बराबर विचार कोइ कृपण को समंजावे तो वह आप ही दान देने को तत्पर हो जावे. क्यों कि तीजोरी में रखे हुए रुपैये में कुछ वृद्धि नहीं होती है परन्तु दान में देने से मारवाडी सूत (व्याज) से भी अनेक गुणा अधिक व्याज—लाभ मिलता है; यथा—

व्याजे द्विगुणं वित्तं, व्यापारे च चतुर्गुणं;
क्षेत्रे शतगुणं वित्तं, दाने चानंतगुणं.

अर्थ-व्याज में दुगुणा, व्यापार में चौगुणा, और

कुंडलिया.

जब लग पोते पुन्य है, तब लग संपत जाण;
संपत से लक्ष्मी रहे, शंका दिल मत आण;
शंका दिल मत आण, दान पुन्य सुकृत कीजे;
जिस से बढे फिर पुण्य, माया सो कबहु न छीजे;
तिलोकऋषि कहे कृपजल, उलचे होत सवाण;
जब लग पोते पुण्य है, तब लग संपत जाण ॥ १ ॥

खेत में सो गुणा द्रव्य होवे और नहीं भी होवे, परंतु सत्पात्र दान से तो अनन्त गुणा फल होता ही है.

श्रीमानों को विचारना चाहिये कि-मेरे पास इतना धन है वह कितने गरीबों को लूंटकर, कितने उपकारीयों आसामीयों को ठगकर, कितनों के घरों में का धन मेरे घर में आया है. इस लिये उन सबों का सीर-हिस्सा इस धन में रहा है. उन का हक्क डूबाना उत्तम का कर्तव्य नहीं है. इस लिये उत्तम पुरुष हमेश दान के लिये तैयार रहते हैं. और दान देकर गर्व नहीं करते हैं. दान के पांच भूषण कहे हैं यथा—

श्लोक-आनन्दाश्रूणि रोमाचो, बहुमानः प्रियवच' ॥
किंचानुमोदना पात्र, दान भूषण पचकम् ॥ १ ॥

अर्थ-दान देती वक्त दातार के १ आंखों में आनन्द अश्रु भरा जावे. २ सब रोम विकसित होजावे, ३ पात्र

का आदरमान करे, ४ पात्र को मधुरालाप से संतोषे कि आज मुझे कृतार्थ किया और ५ अन्य दातारों की प्रशंसा करे. परंतु ईर्षा करे नहीं.

जो लोक दान ने मे पीछे हठते हैं उन के भोगांतराय कर्म का नाश नहीं होता है. अर्थात् वे इच्छित वस्तु प्राप्त नहीं करसकते हैं. इस लिये लक्ष्मी से कौन कौन से प्रकारके परोपकार हो सकते हैं. धनेश्वरी को उस पर जरा ध्यान देना चाहिये. जैसे अनाथ जनों की सहायता, ज्ञानशाला, विधवाओं को मदत, धर्म स्थान, पुस्तकशाला, उपकारी पुस्तक मुफत बांटना, संसार सुधारकों को मदद देना, जैन धर्म का उद्धार और रक्षण कर्ताओं को मदद, अहिंसा का उपदेश के लिये बंदोबस्त दुष्कालादि प्रसंग में खानदान परंतु निर्धन बने हुए कुटुम्बों को गुप्त मदद, इत्यादि कामों में लक्ष्मी का व्यय करने से धर्म व पुण्य की वृद्धि होती है. जो हरएक

मनुष्य इस में से एक २ दिशा में यथाशक्ति द्रव्य का व्यय करे तो कितना भारी उपकार होवें? लक्ष्मी एक दिन उस के मालिक को छोडकर जाने वाली तो है ही तथा मालिक उस को छोड जायगा. तो फीर उस का सदुपयोग कर के स्वार्थ और परमार्थ दोनों क्यों नहीं साधना?

आखीर में सुपात्र दान से क्या लाभ मीलता है इस के बारे में एक श्लोक कहकर इस विषय को खतम करूंगा.

लक्ष्मीः कामयते मतिर्मृगयते कीर्तिस्तमालोकते।
प्रीति श्चुम्बति सेवते सुभगता निरोगता ऽ लिंगति॥
श्रेयः संहतिरभ्युपैति वृणुते स्वर्गोपभोगस्थिति।
मुक्तिर्वांछति यः प्रयच्छति पुमान् पुण्यार्थनिजं॥

अर्थः—जो पुरुष श्रेयस्कार अर्थ के विषे अपना द्रव्य व्यय करता है उस को लक्ष्मी वांच्छती है, बुद्धि

ढूंढती है, कीर्ति देखती है, प्रीति चुम्बन करती है, सौभाग्यता सेवा करती है, निरोगता आलिंगन करती है, कल्याण परंपरा उस की सन्मुख आती है, स्वर्ग के उपभोग की स्थिति उस की साथ सादी करती है, और मुक्ति उस की वांछा करती है.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी महाराज विरचित धर्मतत्त्व संग्रह का दूसरा मुक्ति-संतोष नामक प्रकरण समाप्तम ॥ २ ॥

प्रकरण तीसरा—ऋजुता—सरलता.

मायाविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? ॥
मायाविजएणं अज्जवं जणयइ ॥ उत्तरा० अ० २९.

अर्थः—अहो भगवन् ! माया को जीतने से जीवके क्या फल होता है? अहो गौतम! अज्जव अर्थात् निष्कपटपता-सरलता-ऋजुता की प्राप्ति होती है.

विश्व में सुवर्ण कीमती और मूल्यवान चीज है. इस लिये धनाढय लोगों ही सुवर्ण के अलंकार पहिन कर शरीर की विभूषा करते हैं. अच्छा दिखने का सब को पसंद है. निर्धन लोगों की पास सुवर्ण नहीं है तोवे पीतल के दागीने बनवाते हैं और उसने सुवर्ण का ओप (गील्ट) लगवाते हैं. परन्तु जब कोइ आदमी ऐसा झूठा सुवर्ण का दागीना पहीन कर बाजार में जाता हैं तब व्यापारी लोग

उस को शीघ्रमेव पीछान लेते हैं; उस के गले में सुवर्ण माला देखकर उस को शाहुकार नहीं समझते हैं और कुछ दाम भी विश्वास पर नहीं देते हैं: परन्तु उस को ढोंगी समज कर उस से बात भी नहीं करते हैं.

ऐसे ढोंग आजकल बहुत ही चल रहे हैं. कृत्रीम (बनावटी) सुवर्ण, कृत्रीम हीरा कृत्रीम मोती, कृत्रिम रेशम, कृत्रिम ज्ञान, कृत्रिम भक्ति और कृत्रिम साधुता आजकल बहुत ही दृष्टिगोचर होती है.

हीरा—माणक—मोती आदि जवेरात बहुत मूल्यवान होने के सबब से वडे वडे राजा लोगों की पास भी वह चीज ज्यादा नहीं होती है. परन्तु आज अमेरीकन लोगों ने कृत्रिम (बनावटी) हीरा-पोखराज-मोती बनाये हैं कि जो देखने में तो हजारो रुपैये के जवेरात की बराबरी करते हैं, परन्तु थोडे रोज में बीगड जाते हैं. बनावटी

चीज कभी सच्ची चीज की बराबर नहीं हो सक्ती है. यदि होती तो क्या कृत्रीम हीरा बेचने वाले अमेरिकन मूर्ख हैं की १०००) का नंग शीर्फ ५) रुपैये में दे देवे, परन्तु जिन लोगकी पास लक्ष्मी नहीं है और लक्ष्मीवानोंकी बराबरी में दिखने की आकांक्षा करते हैं. ऐसे लोग ही ऐसी कृत्रीम चीजों खरीदते हैं और थोडे रोज में हाथ घिसते हैं. गरीब दीखने में शरम मानने वाले आज कल बहुत लोग हैं. उन को कोइ गरीब कहता है तो वे गाली देते हैं. परन्तु जानते नहीं कि गरीबाइ यह कुछ अपराध नहीं है; गरीब होने पर भी जो आदमी शुद्ध वर्तनवाले हैं उन को बडे बडे लोग भी मान देते हैं. दुनिया में जीतना दुःख गरीबाइ से नहीं होता है इतना ही गरीबाइ की शरम से होता है. जो लोग गरीबाइ की शरम रखते हैं उन के लिये पहिला नंबर की सलाह यह है कि गरीबाइ का डर रखना अर्थात् बडा आदमी

दिखाने का ढोंग कर के खर्च में नहीं उतरना चाहिये. ढोंग छूपा नहीं रहता है; क्यों कि खाली थेली खडी नहीं रह सक्ती है. इस लिये सरल होना बहुत लाभकारक है सुज्ञ जनों अपनी स्थिति छुपानेकी कोशीश कभी नहीं करते हैं.

कितनेक शाहुकार कपडेका; अनाजका, सरापीका, किंवा और और धंधे करते हैं. वहारसे बोलते हैं कि "हम फलाने कुटुम्बके हैं, हमारे जैसे सच्चे कोन हैं? पांच टकोसे ज्यादा लाभ हम कभी नही मंगते हैं" ऐसे बोलते ही ग्राहकों का शिर काटते हैं. ऐसे कपटी लोग कभी कभी धर्मके शपथ [सौगन] भी लेते हैं. परन्तु धर्म उनसे हजार कोस दूर ही रहता है. नामस्मरण और धार्मिक क्रिया आदि सब में अव्वलमें सरलता—सच्चाइ चाहिये. मायाका सेवन करना और ईश्वरका नाम जपना ऐसा " बग भक्त " तो सबसे दुष्ट होता है.

गुजराती दलपतराय कवी ने कहा है कि—वाणीनी

तरस लागी, विषतणो पीधो पान, एहवोपान पीधाथी नपीधो तेज सारोछे ॥ दाखें दलपत राम ठगवा प्रभुनो नाम एहवो नाम लीधा थी न लीधो ज सारोछे. ॥

इससे आगे चले तो माया कपटका सेवन करने वाला एक और वर्ग भी देखाता है वह वर्ग पंडित लोगोंका है, कितनेक लोग थोडा बहुत पढकर ज्ञानीका ढोंग कर रहे हैं, और सच्चे ज्ञानीका द्रोह करते हैं; स्वकपोल कल्पित अनेक गपोडे चलाते हैं; भोले लोगों को भरमाते हैं, ऐसे लोगों में ऐसे भी आदमी होते हैं कि जो साधुता का भी दंभ करने में पीछे नहीं पडते हैं. कोइक तो लोगों को बताने के लिये तप जप करके महा पवित्र कहलाते हैं; कितनेक तो कहते हैं कि हम त्रिकाल ज्ञानी हैं. हमारे साथ देवों बात करते हैं; हम ईश्वर के फिरस्ते हैं; ऐसी ऐसी अनेक धूर्तता चलाते हैं.

ऐसे धूर्त लोग वहार से तो पवित्रता का और

म्रता का बहुत ही देखाव करते हैं, नम्रता और पवित्रता ो उन के लिये 'व्यापारकी चीज ही होगइ है. कहा है कि-

नमन नमन में फेर है, सब सरिखा मत जान।
दगाबाज दूना नमे, चीत्ता–चोर–कमान ॥

चीत्ता—बाघ, चोर और धनुष्य की कमान, यह तीनों नमते हैं इस का सबब यह है कि-वे अपना मतलब बराबर साध सके. दगाबाज लोग नमते हैं जिसका सबब भी यही है-कि नम्रता से लोगो को प्रसन्न करके पीछे उस को ठगना.

श्लोक-मुखं पद्मदलाकारं, वाचा चंदनशीतलं ॥
हृदय कातती तुल्यं, धूर्तस्य त्रिलक्षणम् ॥

अर्था—धूर्त के तीन लक्षण हैं:—(१) उस का मुख चंद्र समान सौम्य, (२) वाणी चंदन समान, शीतल और (३) हृदय केंची तुल्य अन्य के नुकसान

में बना रहता है, डरता ही रहता है. क्यों कि, कभी कोई मेरा ढोंगको समज जायेगा तो मेरी कमबख्ती होगी! कुदरत का स्वभाव ही है कि उस को ओझल पडदा नहीं पसंद है; वह तो सच्चा रुप प्रकाशने के लिये हरहमेश प्रयास करती है. और धूतजन हर हमेश सच्चोर रूप को छिपाने के लिये प्रयास करते हैं. उन को तो कुदरत का ही काम करने का होता, इस लिये उन को हर घडी सावधान रहना पडता है. और जो सच्चा आदमी है वो तो सदैव निडर ही फीरता है.

श्वेतांबरी, पीतांबरी, रक्तांबरी, कृष्णांबरी दिगंबरी और और तरेह के साधु बहुत ही नजर में आते हैं. परन्तु परमात्म पंथ की साधना करने में मग्न ऐसे तो सज्जन क्वचित् ही नजर में आते हैं; उन के सिवाय और सब पाखंडी-धूर्त हैं; शीर्फ मान—पूजा—लक्ष्मी किंवा

विषय सेवन के अर्थी हैं. कविरत्न किसनदास जीने सच्च कहा है कि:-

जोलों भग तजी नाहि तोंलों भगतजी नाहि,
काहेको गुसांइ जो गुसांइसों न यारी है;
काहेको विराहमन जारे है विराहे मन,
कहा पीर जोपें पर पीर न विचारी है.
कैसो वह योगीजन. जाको न वियोगी मन,
आसन हि मारी जान्यो आस नहिं मारी है.
युकति उपाइ ऐसी उमर गमाइ, कछु
कीनी न कमाइ, काम भयो न भलाइ को,
इहां तो सदाइ धामधूम ही मचाइ पर.
उहां तो नहीं है भाइ राज पोपांबाइ को!

सच्च हैं: वहां' पोपाबाइका राज नहीं है. ' इहां' कोइ धूर्तको दंडदेनेवाला नहीं मीला तो 'वहां' तो अवश्यमेव मीलेहीगा.

श्री समवायांगजी सूत्रमें कहा है कि, ३०

प्रकार के महा मोह बंधक अपराधी जनोंको अपनी दुष्टताका फल ७० क्रोडाकोडी (क्रोड × क्रोड) सागरोपम वर्ष तक भोगना पडता है. इतना काल तक बोधबीज सम्यक्त्व नहीं मीलता है· उनके नामः—

१—५ त्रस जीव को पानी में डूबा--श्वाशोच्छवा रुंधनकर—धूम्रके प्रयोग कर—मस्तक में घावकर—मस्तक में चर्म बन्धनकर मारे. ६ पागलका तथा मूर्खका उपहास्यकरे, ७—८ अनाचार सेवनकर छिपावे या दूसरे पर डाले. ९ सभा में मिश्र भाषा बोले १० भोगी के भोग बलात्कर से रुंधनकरे. ११ ब्रह्मचारी न होकर ब्रह्मचारी कहलावे, १२ बालब्रह्मचारी न होकर बालब्रह्मचारी कहलावे. १३ शेठका धन गुमस्ता चोरे, १४सब ने मिल बडा बनाया वह सब को दुःख देवे या सब वडेको दुःख देवे. १५ स्त्री भरतार परस्पर विश्वास घात करे, १६—१७एक देशके या बहुत देशके राजा की घात

चिन्तवे. १८ साधुको संयमसे भ्रष्ट करे, १९–२१ तीर्थ कर की, तीर्थंकर प्रणित धर्म की, आचार्य उपाध्यायकी निन्दाकरे. २२ आचार्य उपाध्यायकी भक्ति नहीं करे. २३ बहुसूत्री (पण्डित) नहीं होकर बहुसूत्री कहलावे. २४ तपस्वी नहीं होकर तपस्वी कहलावे. २५ ज्ञानी-वृद्ध—रोगी—तपस्वी-नवदीक्षित की वैयावच्च सेवा-नहीं करे. २६ चारों तीर्थ में फूट डाले, २७ ज्योतिष मंत्रादि पापसूत्र प्ररूपे. २८ अप्राप्त देवता मनुष्य तिर्यचके भोगोंकी अभिलाषाकरे. २९ धर्म कर देवता हुओ उनकी निन्दाकरे और ३० देवता आवे नहीं और कहे कि मेरेपास देवता आता है. तो महा मोहनीय कर्म का बन्ध करे. और भी 'दशवैकालिक' सूत्र ५ वे अध्ययनमें कहा है कि:—

गाथा तवतेणे वयतेणे । रूवतेणे य जे नरे ॥
आयारभाव तेणे य । कुव्वई देव किव्विसं ॥ ४६ ॥
लद्धूणवि देवत्तं । उववन्नो देव किव्विसे ॥
तत्थावि से न याणाइ । किं मे किच्चा इम फलं ॥ ४७ ॥

तत्तो वि से चइत्ताणं । लब्भिही एल मूयगं ॥
नरयं तिरिक्खजोणिवा । बोही जत्थ सु दुल्लहा ॥ ४८ ॥

अर्थ-तपस्वी न होने पर दुर्बल शरीरादि कर तपस्वी नाम धरावे, वह तपका चोर. पंडित नहोनेपर वाक्य पटुत्वकर पंडित नाम धरावे, वह वचन का चोर. शुद्धाचारी न होने पर मलीन वस्त्रादि कर शुद्धाचारी नाम धरावे वह आचार का चोर. और धर्मात्मा नहीं होने पर धर्म का वाना धार धर्मात्मा-शुद्धभावी नाम धरावे वह भाव का चोर. इस प्रकार के चोर मरकर किल्विषी (चांडाल समान नीच जाति के) देव होते हैं. वे किल्विषी ऐसा नहीं जान सकते हैं कि यह फल हमे किस कृत्य का मिला है. वहां से चवकर वे गूंगू बोवडे बकरादि तिर्यंच होकर मूंगे२ दुःख भोगते हैं. वहां से आगे नरक तिर्यंच के बहुत भव करते हैं. उन को बोधबीज सम्यक्त्व की प्राप्ति बडी दुर्लभ होती है.

और भी दशवैकालिक सूत्र के ५ अध्ययन के दूसरे उद्देशे की ३७वीं गाथा में कहा है—

> पूयणट्ठा जसोकामी । माणसम्माण कामए ॥
> वहुं पसवइ पावं । माय.सल्लं च कुव्वइ ॥

पूजा—यश—सन्मान का अर्थी जो होता है वह कपट करने वाला होता है, और वह बहुत पाप कर्मों का उपार्जन करता है.

इस्वी सन के सत्तर में सैके में 'सेवेटाइ सेवा' नाम का एक मनुष्य कहने लगा कि—मैं ईश्वर का दूत हूं. परंतु कॉन्स्टॅन्टीनोपल शहर के वडे धर्माध्यक्षने कहा कि इस ईश्वर के दूतपे बंदुक फोडनी चाहिये. यदि यह सच्चा होगा तो गोली नहीं लगेगी. इस युक्ति से वह ढोंगी पकडा गया. उसी मुजब यदि सब ढोंगी लोगों को कोई बुद्धिशाली नर प्रश्न करने का और परीक्षा लेनेका

परिश्रम उठावे तो जगत में से सब ढोंग अदृश्य होजावे.

अंग्रेज लोग के धर्म पुस्तक में कहा है कि:— असल के 'फेरीसी' लोग बहुत दान देते थे, सदाचार का देखाव करते थे, धार्मिक क्रियाओं में चुस्त थे, तो भी इसुक्रीस्त उन लोगों को कहता था कि-"यह सब लोग गणिका से भी दुष्ट हैं; क्यों कि गणिका तो स्पष्ट कहती है कि मेरा धंधा ही बुरा है; परन्तु यह धर्मदंभी लोग तो धर्मीष्ट होने का देखाव करते हैं और अंदर में हलाहल विष रखते हैं." 'पोप' ने इसलिये कहा है कि:—

> Not always actions show the man, we find
> who does a kindness, is not therefore kind.

भावार्थ:—सामान्य रीती ऐसी है कि कामसे मनुष्य के भितर की परिक्षा की जाती है. परन्तु यह रीती हमेश के लिये विश्वासनीय नहीं है. जो आदमी कृपाकार्य करते

ह वे स्वभाव से मायालु ही होते हैं ऐसा निश्चय नहीं है. क्यों कि:—

" An actor is no king, though he struts in royal appendage " अर्थात् बादशाही दमाम से घूमनेवाला नाटककार (पात्र) वास्तव में राजा नहीं है.

माया जब खुली हो जाती है तब उस मनुष्य को लज्जा और भय होता है; वक्त पर अकाल मृत्यु के ग्रास बनना पडता है. और जो पुरुष माया करेतो स्त्री होवे, स्त्री माया करेतो नपुंसक होवे, नपुंसक माया करेतो तिर्यंच होवे,यों माया से पुनर्भवमें नीची२ गति होती है. देखीये—ज्ञातासूत्र में आठवे अध्ययन में महाबल राजाने धर्म में माया सेवन की तो तीर्थंकर होकर भी स्त्री (मल्लीनाथजी) होनापडा! धर्म में की हुइ माया भी इस प्रकार दुःख दाता हुइ,तो फिर संसारार्थ माया करने वाले का तो कहना ही क्या ? इसलिये. दशवैकालिक

सूत्र के ५ अध्ययन के २ उद्देशे में कहा है. कि:-

एयं च दोष दट्ठुणं । नायपुत्तेण भासीतं ॥
अणुमायं पि मेहावी । मायामोसं विवज्जए ॥ ४८ ॥

ज्ञातपुत्र श्री महावीर स्वामीने कहा है कि— बुद्धिमानों को लाजीम है कि अणुमात्र भी माया—कपट का सेवन नहीं करना.

ऋजुता—सरलता के गुण.

सूत्र—अज्जवयाएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? अज्जवयाएणं काउज्जुएणं, भावुज्जुएणं, भासुज्जुएणं, आविसंवाएणं जणयइ ॥

अर्थात:—निष्कपटपनासे काया का, वचन का और भावका सरलपणा होता है अर्थात काया का सरलपना सो निष्कपटी मनुष्य अपना मुख कीसी से छुपाता नहीं है. वचन का सरलपणा सो निष्कपटी मनुष्य बोलने में अचकाता नहीं है. भाव का सरलपणा सो निष्कपटी

मनुष्य कीसी का बूरा इच्छता नहीं है. और उस का कोइ भी अविश्वास नहीं करता है. वह सब का विश्वास पात्र बानता है.

धर्म सीधा है और माया वक्रगती वाली है, इस लिये धर्म में गति करने की ताकाद मायावि पुरुषो में नहीं होती है. भगवानने भी कहा है कि " अज्जुधम्म-गइतच्चं " अर्थात् जो लोग सरल स्वभावी हैं वेही धर्ममें गति कर सकते हैं.

आखीर में कविवर ' शेक्सपियर ' का कहना खूब ध्यान में रखने की सलाह दे कर इस प्रकरण को समाप्त किया जायगा:—

To thine own self be true
And it must follow, as the night the day
Thou canst not then be false to any man.

मतलब की, तुं तेरा आत्मा की साथ सच्चा बन

रहे; इस से तूं कभी किसी को दगा नहीं दे सके.

आत्मा की साथ सच्चा रहना इस को जैन में भाव दया कहते हैं. अर्थात् आत्मा को कभी ठगना नहीं, दुःख का साधन करना नहीं. जो आदमी भाव दया में समझते हैं वे तो कभी 'द्रव्य हिंसा' और धूर्तता नहीं कर सकते हैं.

सरल जीवों इस लोक में बहुमान्य श्लाघनीय निडर सुखमय जीवन व्यतीत करते हुअे बाह्य आयन्तर विशुद्ध धर्म का पालन कर के आगमिक अत्युत्तम स्वर्ग के तथा मोक्ष सुख के भोक्ता होते हैं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज की सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी महाराज विरचित 'धर्म तत्त्व संग्रह' का ऋजुता धर्म नामक तीसरा प्रकरण समाप्तम्.

प्रकरण चौथा मार्दव-मृदुता-नम्रता

विणओ जिणसासण मूलं । विणओ निव्वाण साहगो ॥
विणयाओ विप्पमुक्कस । काओ धम्मो काओ तवो ॥

अर्थः—राग द्वेष को जीतने वाले जैन शासन का मूल 'विनय' है. विनय रूप उत्तम मूल वाला धर्मवृक्ष निर्वाण रूप फल देता है. जीसमें विनय गुण नहीं है उनका धर्म और तप कुछ गिनती में नहीं है.

मनुष्य प्राणी में जितना अभिमान होता है इतना और कोइ प्राणी में नहीं होता है. हिंदुस्तान में इस अभिमान के प्रभाव से ही भिन्न २ वर्ण-ज्ञाति हो गइ हैं. वनीया कहता है, 'हम क्षत्री की रसोइ नहीं जीमनेवाले'

क्षत्री बोलता है, 'हम बनीयाका अन्न नहीं खानेवाले.' दोनों अपने २ मन में मगरूर हैं. बनीया और क्षात्रि की बात तो दूर ही रहने दो, परंतु भंगी भंगी की साथ लडते हैं, तब क्या बोलते हैं कि-" देख ! मैं तेरा जैसा नीच नहीं हूं. मेरी जूती में पांव रखनेवाले कैान हैं ? मैं कुछ जैसा तैसा नहीं हूं." अब देखीये ! भंगी को भी कितना अभिमान है ?

अभिमान क्या क्या सबब से उत्पन्न होता है, उन सब सबबों का नाश करने का रस्ता कौनसा है, और अभिमान से क्या गेरलाभ होता है इतनी बातों का विचार प्रथम कहकर फ़िर अभिमान का प्रतिपक्षी मृदुता अथवा नम्रता से क्या लाभ है सो भी कहूंगा.

अभिमान ८ प्रकार से होता है:—

" जाति लाभ कुलैश्वर्यं । बलं रूपं तपः श्रुतिः ॥ "

अर्थात्:—जाति, लाभ-कूल-ऐश्वर्य-बल-रूप-तप श्रुतिः यह आठ कारण से अभिमान होता है.

१ जातिमदः—मेरा जैसा जातिवंत कौन है ? मैं ब्राह्मण हूं, क्षत्रीय हूं, शेठ हूं, पटेल हूं; ऐसा अभिमान करनेवाला दुसरे जन्म में चण्डालादि नीच जाति में उत्पन्न होता है.

२ लाभमदः—मेरे जैसा लाभ उपार्जन करनेवाला कौन है ? जहां जाता हूं तहां बस धन ही धन नजर आता है. थोडी महिनत से बहुत कमा सकता हूं. ऐसा अभिमान करनेवाला दुसरे जन्म में निर्धन और भिक्षुक होता है.

३ कुलमदः—मेरे कुल जैसा पवित्र किंवा सुप्रसिद्ध कुल किसका है ? मेरा दादा तो मयाजीराव का दीवान था; मैं तो उस परशुराम के कुल का हूं कि जो २१

बार नक्षत्री पृथ्वी करनेवाला था. ऐसा अभिमान करने॰ वाले को दुसरे जन्म में कलंकित नीच कुल मीलता है.

४. ऐश्वर्यमदः—में १०० आदमीका मालक हुं; मेरेहाथ नीचे इतने मनुष्य हैं; में धारुं सो कर सकता हुं; एकको बुलाता हूं; और दश दोडके हाजर होते हैं; ऐसा अभिमान करनेवाला दुसरे जन्म में अनाथ बनता है. जिसका कोइ वालीवारस नहीं होता है और जो हाजारोंकी लाचारी—खुशामद करके पेट भी नहीं भर सकता है.)

५. बलमदः—मेरे सरीखे पराक्रम कोन कर सकते हैं ? पांच दश मनुष्योंको तो में अकेला ही मार सकता हूं. ऐसा अभिमान करनेवाला बलहीन होता है.

६ रूपमदः—मैं कैसा फक्कड जवान हूं ? भले भले भी मेरे रूप को देखकर आश्चर्य पाते हैं. ऐसा अभिमान करनेवाला कुरूप—अपंग होता है.

७ तपमदः—मैं बडा तपस्वी हूं. मुझे जो तपस्वी न कहे उस को मैं देख लेऊंगा. मैंने इतनी २ बडी तपस्या की है और छोटे तप तो मेरी गीनती में भी नहीं हैं. ऐसा अभिमान करनेवाला अशक्त होता है.

८ श्रुतिमदः—मैं बडा ज्ञानी हूं; इतने २ शास्त्रों तो मैंने जीव्हाग्र कीये हैं. मेरी साथ चर्चा करने कौन समर्थ है ? ऐसा अभिमान करनेवाला मूर्ख होता है. दुनिया में यह ८ चीजों मद किंवा अभिमान की जनेता है. इस लिये यह ८ चीजों का स्वरूप देखना चाहिये.

(१) जातिमद प्राप्त हो तब ऐसा विचारे कि—रे प्राणी ! तूं कहता है कि मेरी माता पक्ष की जाति श्रेय है. परंतु तू विचार कर कि कितनी कितनी जाति होती हैं और इस में तेरी जाति कौन गीनती में है ? सब मील के ८४,००,०,० चोर्यासी लाख जाति

बार नक्षत्री पृथ्वी करनेवाला था. ऐसा अभिमान करने-वाले को दुसरे जन्म में कलंकित नीच कुल मीलता है.

४. ऐश्वर्यमद:—मैं १०० आदमीका मालक हुं; मेरेहाथ नीचे इतने मनुष्य हैं; मैं धारुं सो कर सकता हुं; एकको बुलाता हूं; और दश दोडके हाजर होते हैं; ऐसा अभिमान करनेवाला दुसरे जन्म में अनाथ बनता है. जिसका कोइ वालीवारस नहीं होता है और जो हाजारोंकी लाचारी—खुशामद करके पेट भी नहीं भर सकता है.)

५. बलमद:—मेरे सरीखे पराक्रम कोन कर सकते हैं ? पांच दश मनुष्योंको तो मैं अकेला ही मार सकता हूं. ऐसा अभिमान करनेवाला बलहीन होता है.

६ रूपमद:—मैं कैसा फक्काड जवान हूं ? भले भले भी मेरे रूप को देखकर आश्चर्य पाते हैं. ऐसा अभिमान करनेवाला कुरूप—अपंग होता है.

७ तपमदः—मैं बडा तपस्वी हूं. मुझे जो तपस्वी न कहे उस को मैं देख लेऊंगा. मैंने इतनी २ घडी तपस्या की है और छोटे तप तो मेरी गीनती में भी नहीं हैं. ऐसा अभिमान करनेवाला अशक्त होता है.

८ श्रुतिमदः—मैं बडा ज्ञानी हूं; इतने २ शास्त्रों तो मैंने जीव्हाग्र कीये हैं. मेरी साथ चर्चा करने कौन समर्थ है? ऐसा अभिमान करनेवाला मूर्ख होता है. दुनिया में यह ८ चीजों मद किंवा अभिमान की जनेता है. इस लिये यह ८ चीजों का स्वरूप देखना चाहिये.

(१) जातिमद प्राप्त हो तब ऐसा विचारे कि—रे प्राणी! तूं कहता है कि मेरी माता पक्ष की जाति श्रेय है. परंतु तू विचार कर कि कितनी कितनी जाति होती हैं और इस में तेरी जाति कौन गीनती में है? सब मील के ८४,००,०,० चोर्यासी लाख जाति

होती हैं. ७ लाख पृथ्विकाया की जाति; ७ लाख अप-काय (पानी के जीवों) की जाति; ७ लाख तेउकाया (अग्नि के जीवों) की जाति; ७ लाख वायुकाया (हवाके जीवों) की जाति; २४ लाख वनस्पति की जाति; २ लाख द्वीइन्द्रिय (कीडे आदिक) जीवों की जाति; २ लाख त्रीद्रिय (कीडी आदिक) जीवों की जाति; २ लाख चतुरेंद्रिय (मक्खी आदिक) जीवों की जाति; ४ लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय (पशु) की जाति; ४ लाख नरक के जीवों की जाति; ४ लाख देवता के जीवों की जाति; १४ लाख मनुष्य की जाति. वह सब मिलके ८४ लाख जाति. होती है. इन ८४ लाख जाति में अनंत बार तैंने जन्म लीया है. नरक का कीडा भी तूं वन चुका है और देवलोक का देव भी बन चुका है, तो अब वनीया—ब्राह्मण—क्षत्रीय पटेल होने से अभिमान क्या करता है? विचार

करना चाहिये कि, वोही जीव तूं था कि जो एक वख्तपर-भंगी हो कर झाडू नीकालता था, बहुत लोगों तेरी तर्फ तर्जनी अंगुली बताते थे, सब की गाली तूं सहता था : वोही जीव तूं आज जाति का अभिमान कर रहा है सो कैसी मूर्खता ? क्षत्रीयनी ब्राह्मणी आदि उत्तम के उदर से जन्म पाया तो इस में क्या पराक्रम किया ? क्या कोइ परमार्थ किया है. ?

उंच जाति मीली तो उस का सदुपयोग करना चाहिये कि जिस से फीर कभी नीच जाति में जन्म लेना न होवे. तो ही ऊंच जाति प्राप्ति का सार किया जानना. (२) कूलमदप्राप्त होवे तब ऐसा विचारे कि-रे प्राणी ! तू कहता है कि-मेरे पिता के पक्ष का कुल श्रेष्ठ है: परन्तु विचार कर कि-कितने कितने कूल होते हैं और इन में तेरा कूल कोन गिनान में हैं ? सब मीलके १, ९७, ५०, ००, ०००००००० कोडी

कूल हैं. १२ लाख कोडी कूल पृथ्विकायके, ७ लाख कोडी अपकाय के, ३ लाख कोडी तेउकायके, ७ लाख कोडी वायु कायके, २८ लाख कोडी वनस्पतिके, ७ लाख कोडी बेइन्द्रियके, ८ लाख कोडी त्रीन्द्रियके, ९ लाख कोडी चौरिन्द्रियके, १२॥ लाख कोडी जलचर (पानी में रहने वाले) के, १० लाख कोडी स्थलचर (पृथ्वीपे चलनेवाले) के, १२ लाख कोडी खेचर (आकाश में उडनेवाले पक्षी) के, १० लाख कोडी उरपर (पेटसे चलनेवाले) के, ९ लाख भूजपर (हाथों से चलनेवाले) के, २५ लाख कोडी नरक के २६ लाख देवता के और १२ लाख कोडी मनुष्य के: यों सब मिल कर एक क्रोड साडी सत्ताणवे लाख कोडी कूल हुए. इन सब कूल में अनेक बार तैंने जन्म लिया है. तो अब उंच कूलका अभिमान क्यों करता है ? उंच कुल प्राप्त कर पुनः नीचकुल में जना न होवे

ऐसा करे तभी ऊंच कुल प्राप्ति का सार जानना. [३] लाभ मद प्राप्त होवे तब ऐसा विचारे कि—रे प्राणी ! तूं हजार किंवा लाख दश लाख का लाभ से अभिमान क्या करता है ? देख, चक्रवर्ती की कितनी आवक थी सो उन को भी अनुभव से मालूम हुवा कि धन से सुख प्राप्त नहीं होता है. तब वे सब लक्ष्मी को छोडकर त्यागी हो गये. अब तूं थोडासा धन पाया तो इस में क्या अभिमान करता है ? धन कुछ हमेशा तेरी पास रहने वाला नहीं है. और धन की प्राप्ति तो नीच वर्ण के लोगों भी बहुत करते हैं; तूं कुछ नवाइ नहीं करता है. यथेच्छित लाभ की प्राप्ति से अन्य की लाभान्तराय का छेदन कर पुनः लाभान्तराय न आवे ऐसा करे तभी लाभ प्राप्ति का सार जानना. (४) ऐश्वर्य मद प्राप्त होवे तब ऐसा विचार करे कि-रे प्राणि ! तेरे को कितनीक ऐश्वर्यता प्राप्त हुइ है, परन्तु तूं राजा रावण का ऐश्वर्य

सुप्रसिद्ध है. उसे सुन, एक कविने कहा है किः—

असी क्रोड गज बंध, अर्व दश तुरी तुखारा;
क्षत्री क्रोड पचास, पायदल नील अठारा;
सोलसे सामंत, एक सहस्र पंदरे राजा;
सर्व धरत हैं शंक, वजत इंद्रापुर वाजा;
टोंचे सीस तस कागले, एक दिन ऐसो भयो,
नरनारेन्द्र मत कर गवे, कहाँ रावण किस दिश गयो?

जैन मतानुसार रावण की पास २१ लाख हाथी, २१ लाख घोडे, २१ लाख रथ, २४ कोटी पायदल और हजारों विद्या सिद्धकी हुइ थी ऐसे ही कुंभकर्ण विभिषण जैसे भाइ तथा इंद्रजीत मेघवाहन जैसे पुत्र आदि थे तोभी अभिमान से उस का विनाश हुवा; इस से भी बडे२ और केइ होकर विरलागये हैं। तो तेरा ऐश्वर्य कौनसी गीनती में है ? ऐश्वर्यवान अन्यकी ईर्षा नहीं करता हुवा जो अनैश्वर्यों को साहायक बनता है उसकोही ऐश्वर्यता का

सार कर्त्ता जानना. (५) बल मद प्राप्त होवे तो ऐसा विचारे कि—रे प्राणी ! तुं बल का अभिमान करता है. परन्तु देख! तीर्थंकरका बल कितना कहा है यथा-२००० सिंह का बल एक अष्टापद में होता है, १०,००,००० अष्टापद का बल एक बलदेव में, २ बलदेव का बल एक वासुदेव में, २ वासुदेव का बल १ चक्रवर्ती में, क्रोड चक्रवर्ती का बल एक देवता में, क्रोड देवता का बल एक इन्द्र में, और अनत इन्द्र भी इकट्ठे हो कर तीर्थंकर की चिटी अंगुली नमाने के लिये समर्थ नहीं होते हैं !(ऐसा ग्रंथ में लीखा है)अब विचार करना कि इन सब के मुकाबले में तूं कोन मात्र है ? इस जमाने में भी एक एक मल्ल ऐसे हैं कि जो १० कोस तक दोड कर जा सकते हैं, १०० मल्लको हठाते हैं २५ आदमीका वज्न अकेले उठा सकते हैं. लोह की सांकल तोड डालते हैं, मोटर पकड कर खडी करदेते हैं. उन की

पास तेरा बल कोन मात्र है? जो बलवान होकर अन्य को नहीं दबाते हैं. संयम तप वैयावृचादि शुभ कार्य में बल का व्यय करते हैं. वही बल प्राप्ति का सार जानना (६) रूपमद प्राप्त होवे तो विचारे कि—इस गंदी काया का अभिमान ही क्या करना? विचारना चाहिये कि इस शरीर में साडेतीन क्रोड रोम हैं, इन प्रत्येक रोम में पौने दो दो रोगों रहे हैं. इसी मुजब यह मनुष्य शरीर पांच क्रोड से अधिक रोगों से भरपूर है. सनत् कुमार चक्रवर्ती राजा स्नान करता था उस वख्त देव उस का रूप देख कर चकीत हुआ. तब राजाने गर्व करके कहा-कि 'अबी तो मेरा शरीर तैलादि से वेष्टित है; परंतु जब मैं वस्त्रालंकार पहरके राज्यसभा में जा बैठुं तब मेरा रूप देखना.' इतना अभिमान से उस के शरीर में रोग का जन्म हुआ जिस के प्रभाव से शरीर सड गया और शरीर बदसीकल हो गया. यह रूपमदका फल देखीये!

स्त्री को तो रूपमद अल्प मात्र भी बहुत नुकशान कारक है. कहा है कि—'रूपवती भार्या शत्रुः' अर्थात् रूपवती स्त्री का सतीत्व झुंटने के लिये बहुत ही दुष्ट लोग प्रयत्न कर रहे हैं. इस लिये रूपवती स्त्री का पति सुख से बैठ सकता नहीं है. इस लिये सुशीला स्त्री को लाजीम है कि, रूप का मद करना तो दूर रहा परंतु रूप को जाहीर भी नहीं करना. जो रूपवान होकर ब्रह्मचारी होते हैं वही रूप प्राप्ति का सार जानना.

(७) तपमद प्राप्त होवे तो विचार करे कि—आज कलके मनुष्य का शरीर कमताकद होने से अगाउ की माफीक तप तो हो भी नहीं सकता है. तो तप का अभिमान क्यों करना ? श्री महावीर भगवानने-चौमासी (चार चार महिने की) नव वख्त तपस्या की; छ मास की एक वख्त तपस्या की, तेरह बोल का अभिग्रह लिया कि जो छ मास में पांच दिन कमी थे तब फला;

दो मास की ६ वख्त, १॥ मास की १२ वख्त, १५ दिन की ७२ वख्त, ३ मास की २ वख्त, २॥ मास की २ वख्त, तपस्या की, और भद्रपडिमा—महाभद्रपडिमा—शिवभद्रपडिमा १६—१६ दिन की और बारहवी भिक्षु की पडिमा तेला करके १२ वख्त की, २२९ बेले (छट्ठ) सब मिल के १२॥ वर्ष और १५ दिन में सीर्फ ३४९ दिन आहार लिया. इतनी सख्त तपस्या करके भी एक तिल मात्र भी गर्व नहीं किया और नम्रता—क्षमा—सागर बन रहे. गोशालाने उन के शिष्यों को जला दिया तो भी अपनी तपस्या का प्रभाव से उस को कुछ नुकशान नही किया.

जो लोग तपस्या करके महिमा पूजा की वांच्छा करते हैं उन को उतनाही फल मिलता है. वाच्छा-युक्त तप से निर्जरा होनी मुश्कील हैं, इस अमूल्य तप को गर्व किंवा महिमा की वांच्छा का जुज लाभ के

लिये गुमाना नहीं चाहिये. तपके प्रभाव से किसी को आशिर्वाद देना, या किसी को श्राप देना, यह भी कोडी के लिये क्रोडों द्रव्यका व्यय करने जैसा महा नुकशान करता है. जो निराभिमानतासे फल की वांछा रहित तप करते हैं वे मोक्ष के तथा उत्तम देवता के सुख प्राप्त करते हैं. (८) श्रुतिमद होवे तो विचारे कि-रे प्राणी ! गणधर देव को 'उपन्नेवा' (उत्पन्न होने वाले पदार्थ), 'विघनेवा' (विनाशहोने वाले) 'धुवेवा' (शाश्वते पदार्थ) इन तीनों ही पदका ज्ञान पढाने से वे मुहूर्त मात्र में पूर्व का ज्ञान (कि जो १६३८३ हाथी डुबे इतनी स्याहीसे लिखाय) उसे कंठाग्र करते थे. त्रिपदी विद्याके धारककी बुद्धि आगे आजकल के मनुष्य की बुद्धि कौन गिनती में है ? और भी देखीये !आजकल तात्वज्ञान का तो शोख बहुत थोडे ही मनुष्यों को होता है. जीधर देखो उधर वार्ता-नव-

को तृण बराबर गीनता है; अर्थात् अभिमान में पड कर घर को पाड तोड भव्य महेल बनाने के लिये कटिबद्ध होता है; एक रुपैयाके काम में हजारों रुपैये का खर्च कर देता है; लग्नादि प्रसंग में सीर्फ मान के ही महोडे दारु छोडने में—रंडी नचाने में-बाजे बजाने में, इत्यादि कुकर्मों में हजारो रुपैयेका व्ययकर देते हैं. बडे बडे लोगोंका ठाठ माठ देख कर वे भी ऐसा ठाठ करते हैं और करजदार बनके मृत्यु पर्यंत अन्यके दास बन रहते हैं.

अभिमान को जीतने की कुंजीयें.

१ श्री उत्तराध्यन सूत्रमे के २९ अध्यायमें कहा है किः-

माण विजएणं भंते ! जीवे कि जणयइ ? ।
माण विजएणं मद्दवं जणयइ ॥

अर्थात्:—शिष्यने पूछा कि, अहो भगवन्! मानको जीतनेसे कौनसे गुनकी प्राप्ति होती है ? गुरुने कहा

कि—मृदुता—नम्रता—विनय गुणकी प्राप्ति होती है.

विचारना चाहिये कि जो उत्तमता प्राप्त होती है यह अधिक उत्तम बनन के लिये ही होती है. उक्त आठ प्रकार की उत्तमता प्राप्त कर आत्मोन्नति के बदल अवनति करते हैं यह कितनी जबर भूल है. इस बातको समजकर उत्तम प्राणी अभिमान का त्यागकर विनय वंत बनते हैं.

३ इस विनयगुणको ही धर्मका मूल कहा है. मूल मजबूत होगा तो वृक्ष और इमारतकी जींदगी लंबी होगी. भगवानने कहा है कि,

विनयओ नाणं. नाणाओ दंसणं।
दंसणाओ चरणं. चरणं हुंति मोक्खो ॥

अर्थात्—विनय से ज्ञान आता है: ज्ञान से जीवा जीव का जानपणा हो के सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है,

समकिती जीव चारित्र ग्रहण कर सकता हैं; और चारित्र से मोक्ष मीलती है. इसलिये सब में विनय गुन अव्वल दरज्जा का है. जिस को ज्ञान की इच्छा हो. समकित की इच्छा हो. सर्व से वैरभाव मीटाने की इच्छा हो, निर्मल यश की इच्छा हो और मोक्ष की इच्छा हो, उस को लाजिम है कि विनय और नम्रता अवश्य ही धारण करना.

जो गुणीजन हैं उन का गुणग्राम करके उन के गुण दिपावे; काया से उन को साता उपजावे; ऐसे गुण मेरेमें कब आयंगे ? ऐसी भावना भावो.

नम्रता है सो महत्व का लक्षण है. छोटे लोगों में नम्रता नहीं होती है कि जीतनी बडों में होती है. पांच रुपैये का सिपाइ मीजाज करता है और गाली नीकालता है. परन्तु गवर्नर और बडा साहुकार तो हमेशा ही नम्र होते हैं और मधुर वचन बोलते हैं. कहा है कि:—

दोहा—नमे सो आंबा-आंबली, नमे सो दाडम द्राख ॥
एरंड बिचारा क्या नमे, जिसकी ओछी साख*

मराठी में कहा जाता है कि,—"श्रेष्ट लोकातें नम्रपणे सेवी दुर्बलावरी आदरे प्रेमठेवी" अर्थात् बडा आदमी वह है कि जो नम्रपणा धारण करता है. और दुबलों का आदर व प्रेम करता है.

देखीये पांव सब के नीचे हैं सब शरीर का वजन उठा कर भी अभिमान नहीं करते हैं वे पुजाते हैं. और नाक निकम्मा हो ऊंचा है तो सब उसे काटने का कहते हैं. तेरा नाक काट डालेंगे !

बडा होने को तो सब चाहते हैं; परन्तु बडा होना मुश्कलि है. देखीये ! खानेका 'बडा' बनाते हैं उस को कीतने कष्ट सहन करने पडते है ?

---

* नमन्ति सफला वृक्षाः । नमन्ति सज्जना जनाः ॥
मूर्खं च शुष्कं काष्टं च न नमन्ति कदाचन ॥

प्रथम थे वो मर्द, मर्द के नार केवाये,
फ़र गंगाका स्नान, शिला से युद्ध कराये;
हुवे समुद्र पार, घाव बरछीके खाये,
इतने कष्ट जिन सहे, तब वो 'वडा' पद पाये !

सत्य है कि, कभी कभी अच्छे आदमी की नम्रता का लाभ ले कर दुष्ट आदमी नुकशान पहुंचाते हैं; परन्तु तो भी जो सच्चे बडे होते हैं वे तो कभी नम्रता छोडते ही नहीं है. वो तो समझते हैं कि—

वडे को दुःख पूर है, छोटे से दुःख दूर;
तारा तो न्यारा रहे, ग्रहे चद्र और सूर.

ग्रहण चंद्र सूर्य को ही होता है, न कि तारे को परन्तु प्रशंसा किस की जाती है ? चंद्र-सूर्य की किं वा तारे की ?

जो नम्र आदमी है वो सब का मित्र बन रहता है; क्यों की उस की जबान सर्वदा मीठी होती है. उस का पोशाक, चलने की रीति, वाणी, सब निर्दंभ

होने से उस की ईर्षा करने का कारन किसी को नहीं मीलता है. परन्तु जो ढोंगी है उस के शत्रु बहुत ही होते हैं और वह सब का बूरा ही चाहता है; यद्यपि बूरा तो खुदका ही होता है. कहा है कि—

"Pride goeth before destruction and a haughty spirit before a fall"

अर्थात्—विनाश के आगे अहंकार चलता है और निपात के आगे मगरुरी चलती है.

डॉ. यंग ने सच्च कहा है कि—

Can Pride and Sensuality rejoice?
From purity of thought all pleasures spring;
And from a humble spirit all our peace.

भावार्थः—क्या, मगरुरी और विषयासक्ति वाले मनुष्य को कभी हर्ष हो सकता है? कभी नहीं. आनंद के झरका मूल विचारशुद्धि में है और शांति के झराका

मूल नम्रता में है.

जिस की पास नम्रता है वो कभी आत्म श्लाघ नहीं करता है. क्यों कि आत्म श्लाघा करने वाले मगरूर आदमी कभी अपनी भूल नहीं देख सकते हैं. 'मॉन्डर' ने कहा है कि:—

" Humility is the foundation of ever virtue "

" हर एक सद्गुण का पाया नम्रता है " और-

" Modesty is not only an ornament but a sheild"

" सभ्यता अलंकार और ढाल दोनों का काम करती है. " और—

" Men's merit rises in proportion to their modesty "

" ज्यों ज्यों मनुष्य नम्र होता है त्यों त्यों उस की लायकात वढती है. "

आखीर में एक असर कारक द्रष्टांत से यह प्रकरण

खतम किया जायगा. एक नदी के किनारे पर ओक नाम का बडा भारी वृक्ष था. और सेकडो रामसर (कूंचा—सरखट) थे. एक रोज पवन के तोफान से वह ओक का वृक्ष मूल से टूट पडा और नदी में खेंचता ही चला. चलते चलते उस की द्रष्टि रामसर की तर्फ गइ. और उन सब रामसरों को टटार देख कर वह वृक्ष बोला कि, 'अरे क्षुद्रों ! क्या तुम अब तक खडे हो ?' नम्र रामसरोंने जवाब दिया कि, ' जी हां ! महरबान ! जब पवन का झपाटा और पानी का ओघ आता था तब हम सब नीचे नम जाते थे और पवन पानी हमारे शिर पर हो कर सीधे चले जाते थे. और जिस को नम जाने का नहीं आता था ऐसे वृक्षों का नाश करने के लिये दौडे जाते थे ! "

परमपूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्र-
दाय के बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋषिजी
प्रणित 'धर्म तत्त्वसंग्रह' ग्रन्थ का चौथा 'नम्रता'
नामक प्रकरण समाप्तम ॥ ४ ॥

संसार सागर में तिरती वख्त मनुष्य जो जो चीज को देखता है उन सब चीजों की इच्छा करता है. द्रव्य देखा तो उस को पकड के शिर पर रखने के लिये दौडता है; घर देखा तो उस को भी लेने के लिये दौडता है, सुंदरी देखी तो उस को भी गोद में लेता है; पुत्र—मित्र आदि सब की सब चीजों लेने के लिये दौडता है. कोइ चीज ऐसी नहीं है कि जिसको वह नहीं मंगाता है; परन्तु विचारता नहीं है कि, "इतना वजन मैं किस तरह से उठा सकूंगा? और वह वजन मेरी गति को मंद करेगा किंबहुना कभी मुझे डुबा भी देगा!' ऐसा तो विचार ही नहीं करता है. एक मूर्ख की बात इंग्लंड देश में कही जाती है. वह मूर्ख मुसाफरी के लिये चला तब खुरशी, टेबल, प्याला; वस्त्र, कागज, पुस्तक. बरतन, बत्ती, दुवात-कलम, बीछाना आदि सब चीजों लेकर चला. रस्ते में कभी उंदर होगा तो क्या करना? उस

को पकडने के लिये पिंजरा चाहिये ! मर जावेंगे तो क्या करें? कबरका साहित्य चाहिये ! ऐसा विचार आने से ऐसी ऐसी चीजों भी लेकर चला ! इस से उस की पास इतना वजन हुवा की मुसाफरी कर सका ही नहीं और सब लोग उस की हांसी करने लगे.

'सीनेका' (Seneca) ने सच्च कहा है कि:—

" How often do we labour for that which satisfieth not? More then we use is more then we need and only a burden to the bearer- We most of us give ourselves an immense amount, of useless trouble, and encumber our selves, as it were, on the journey of life with a dead weight of unnecessary baggage "

अर्थात्—"जो चीज जरुरी के काम की नहीं है वह सीर्फ वजन रूप है. बहुत मनुष्यों निष्प्रयोजन की वस्तु का संग्रह कर नेकी तकलीफ उठाते वे जिंदगी की मुसाफरी में वजन उठा कर निरर्थक दिक्कत पाते हैं. जीतने दरजे

बजन कमती किया जाता है उतने ही दरजे मुसाफरी सुख रूप होती है.

अब विचारने का यह है कि—मनुष्य मुसाफर के शिरपे कौनसी चीजों का बजन है. यह बजन दो प्रकार का होता है: (१) बाह्य; और (२) आभ्यंतर. इस में पहीला बाह्य बजन सो लक्ष्मी, और स्त्री आदि स्वजन.

१ लक्ष्मी-जिस की पास ज्यादा लक्ष्मी है उस को चिंता भी ज्यादा है. कहा है कि—' संपत तहां विपत्त. ' श्रीमंत की तर्फ दृष्टि कर देखो ! उस की अनेक देश देशावरों में दुकानों चल रही हैं, अनेक तरह के व्यापार होते हैं. जिस में लेना-देना, तेजी-मंदी, नफा-नुकशान, सब की फीकर उस मालीक को होती है. हायरे ! मेरा धन कोई खा जायगा ! दुकान बैठ जायगी ! झाझ डूब जायगा ! तेजी मंदी से नुकसान हो जायगा ! बाप

दादा के नाम को दीवाला निकलने से बट्टा लग जागया, ऐसी ऐसी चिंताओं में वह श्रीमंत दिन और रात्रि निर्गमन करता है; घडीभर सुख से सो भी सकता नहीं है. कितनेक तो जिंदगी पर्यंत धन जमीन में दाटके उस पर बीछोना करके सो रहते हैं और विनपगार चौकीदार की माफीक उस धन का रक्षण करते हैं; और अधिक ममत्व से वे मरके सर्प हो कर उस धन की चौकी करते हैं. देखिये ! लक्ष्मी का वजन जिस की पास है वो किस तरह से समुद्र पार जा सकेंगे ?

२ और स्त्री आदि स्वजन 'जिन को ज्यादा कुटुम्ब है उन को ज्यादा विटंब है.' स्त्री को अलंकारादि चाहिये, लडके को वस्त्रादि चाहिये, भगिनी का लग्न करने का है, पुत्री को उस के श्वशूरपक्ष के जनों की साथ टंटा चलता है, उन को समझाने का है. ऐसी ऐसी सेंकडों तरह की जंजाल लगी रहती है. इस लिये धंधा

रोजगार, ज्ञान-ध्यान आदि में चित्त बराबर नहीं लगता है.

इतने पर भी स्त्री-पुत्र-मित्र निमकहलाल होने मुशकिल होते हैं. दर्द में, निर्धनता में, चिंता में कोई भाग नहीं लेते हैं. मूर्ख मनुष्य समझता है कि-मेरी स्त्री, मेरा मित्र, मेरा पुत्र, मेरा पिता; परंतु कोई किसी का नहीं है. सब स्वार्थ के लिये लग रहे हैं. जब स्वार्थ नहीं निकलता है तब कोई किसी को पूछता भी नहीं है. रत्नेश्वर कविने सच्च कहा है कि:—

को नथी शठ ! कुटुंब अर्थनं, सर्व को सुख सगुंज गर्थनुं.
पूर्व जन्म कृत भोग दोष त्यां, वैर प्रीति सहु कोई पोषतां.

इस विषय में एक दृष्टांत बहुत हितकारक है:—

कोई एक नगर का राजा के पास एक बडा चतुर मंत्री था. उस मंत्री के तीन मित्र थे—पहिला मित्र उस को बहुत प्रिय था. खाना—पीना—फिरना

सब काम उस की साथ ही करता था. उस को बहुत धनादि हर तरह की मदद देकर प्रसन्न रखता था. दोनों मित्र हर हमेश साथ ही रहते थे इस लिये उस का नाम 'सदामित्र' रखा गया था.

दूसरा मित्र होली—दीवाली आदिक पर्व के रोज आता जाता था, इसलिये उस का नाम 'पर्व मित्र' रखा गया था. वो भी जब आता तब मंत्री उस को धन-वस्त्र-अलंकार- भोजन-मानसन्मानादिसे संतुष्ट करता था.

तीसरा मित्र का नाम 'जुहार मित्र' रखा गया था, क्यों कि वह कभी २ मंत्री को रस्ता में मिलता था तब सीर्फ ' जुहार' करने से मीत्र हो गया था.

एक रोज राजाजी उस मंत्रीपर कोपायमान हो गये और सुभट को हुकम फरमाया कि, मंत्री को मार डालो. मंत्री समझा कि जो मैं कोइ मित्र के घर जाकर मेरा

मेरे परमप्रिय भाइ ! आप बीलकूल डरो मत. मेरे घर में आप आनंद से रहो. राजाजी तो भोले हैं; दो दिन पीछे पस्तायेंगे और आप को फिर बुलालेंगे. इस मुजब कहके उस को घर में रखा और उस की अच्छी तरह से बरदास करने लगा.

एक रोज किसी मुश्कील काम में सलाह के लिये राजा को मंत्री की जरुरत पडी. इस लिये मंत्री को ढूंढने के लिये गांव गांव में आदमी भेजे. तब मंत्री आप ही राजा की पास जा कर सलाम करके खडा रहा. और राजाने उस को और उस के सच्चे मित्र को बहुत द्रव्य देकर अपनी पास रख लिया.

बस ! बात तो इधर खतम हुई. यह एक द्रव्य –दृष्टांत है परन्तु इस का परमार्थ समझने योग्य है. राजा सो कर्म, मंत्री सो चैतन्य, 'सदा मित्र' सो शरीर,

'पर्व मित्र' सो स्वजन परिवार, और 'जुहार मित्र' सो गुरु और धर्म. राजा का कोप हुआ अर्थात् अशुभ कर्म का उदय हुआ तब 'सदा मित्र अर्थात् शरीर भी बदल गया. (जो केशको तेल फूलेल लगाकर काले भमर जैसे बनाये थे वो पीले किंवा श्वेत हो गये; जिन आंखों को अंजन से आकर्षणीय बनाइ थी वह अशोभनिक होगइ; दांत पडने लगे, शरीर कंपने लगा, कान बधिर हो गये जठर मंद हो गया. इत्यादि) देखिये! जिस शरीर को अन्न-वस्त्र-सुगंधि वस्तु आदिसे हर हमेश तृप्त कर रखा जाता था वही शरीर कैसा दगा देता है? जिस का पालन के लिये बहुत ही छकायके जीवोंकी हत्या की बहुत ही मनुष्योंसे टंटा कीया, बहुत ही प्रकारकी तकलिफ उठाइ वह शरीर भी अशुभ कर्म का उदय की वक्त तेरे कुछ काम में नहीं आता है बल्के रोगादि के तावे हो पहिले हीं उत्तर देता है.

दूसरा जो 'पर्वीमित्र' अर्थात् स्त्री-पुत्र-स्वजन आदि है वे भी खाने के तैयार होते हैं परन्तु काम की वक्त लाचार हो जाते हैं क्या करुं ? बस ! इतना ही कहा देते हैं माता पिता को धन कमा के देने से वो. संतुष्ठ होते हैं और कहेंगे कि मेरा पुत्र रत्न जैसा है पन्रतु पुत्र अशक्त होगा तो वे कहेंगे कि, ऐसे पुत्र से पत्थर ही अच्छा, ! ऐसे हि जिन माबापकी पास धन होति है उन की सेवा चाकरी करने के लिये पुत्र हमेश तैयार होता है पन्रतु जो निर्धन है उस का पुत्र उस की खबर भी नहीं पूछता है और कहता है कि इन बुढीवा बढे को मृत्यु क्यों नहीं आता है ? कभी कभी पिता का द्रव्य लेन के लिये उस को जहरआदि प्रयोग से मार भी देते है, कभी कोईमें तकरार भी की जाति है.

पति की पास धन-तन आदि का जोर होता है तो स्त्री उन की साथ प्रीति करती है. भरतार करतार कहती है, परन्तु निर्धन किंवा निर्बल पति को उस की स्त्री हर हमेश [illegible], [illegible] आदि शब्दों से अपमान करती

है और कोइ कोइ दुष्टा तो व्यभिचार भी सेवती है. बहुतसी स्त्रीयों उदर पोषण के लिये पतिको सरकार में दोरती है, कितनीक तो विष आदि प्रयोगःसे पति को गतःप्राण भी करदेती है. पति भी रूपवती स्त्री को चाहता, है स्त्री बदशिकल होने होने से जार कर्म करता है; स्वपत्नी को दगा देता है. जिस स्त्री का पिता श्रीमंत होता है उस स्त्री का पति उस की साथ प्रेम से रहता है; निर्धन की पुत्री का पति उस की दरकार ही नहीं करता है. स्त्री हीनांगी होवे तो उस का पति उस की मृत्यु भी वांच्छता है. द्रव्य के लिये पिता पुत्री को बेचता है ! बारह वर्ष की रूपवती कुसुम जैसी पुत्री को ६० वर्ष के बुड्ढे को देता है. अब देखिये ! पिता कीस का और पुत्री कीसकी ? बस ! यों सब कुटुम्बियों में स्वार्थ ही की सगाइ है.

तीसरा 'जुहार मित्र' अर्थात् धर्म है सोही सच्चा मित्र है, सो विश्राम का स्थान है. अशुभ कर्म का

कोप होता है तब 'धर्म मित्र' हाथ पकड कर शरणा देता है. कोइ भी चीज ऐसी नहीं है कि जो 'धर्मभित्र' पाससे न मील शके. कहा है कि:—

धर्मोऽयं धनवल्लभेषु धनदःकामार्थिनां कामदः
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किम्परः पुत्रार्थिनां पुत्रदः।
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नाना विकल्पैर्नराणाम्
तत्किमृयन्न ददाति वांच्छितफलं स्वर्गापवर्गावधि ॥

मतलब कि—धर्म है सो धनकी इच्छा वालो को धन देता है. कामार्थो को काम, सौभाग्य के अर्थी को सौभाग्य, पुत्रार्थो को पुत्र, राज्यार्थो को राज्य देनेवाला धर्म ही है. मनुष्यों को जो नाना प्रकार की इच्छा होती है वो सब तृप्त करनेवाला धर्म ही है. किंवहुना, प्राणी धर्म से स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्ति कर सकता है.

अंग्रेज कवि 'काउपर' ने कहा है कि:—

Religion ! what treasures untold
Reside in that heavenly word—

More precious than silver or gold
Or all this earth can afford.

भावार्थ इस का यह है कि:—धर्म ! इस स्वर्गीय शब्द में कितना अकथ्य खजाना भरा है ! सोना रूपा और पृथ्वि की सब चीजों से भी यह धर्म बहुत मूल्यवान है.

'धर्म मित्र के' सिवाय दुसरे दोनों मित्र कुछ काम के नहीं हैं. सुंदरदासजीने कहा है कि—

मेरी मेरी क्या करे रे मूर्ख ! तेरी कहे क्या हो गइ तेरी ?
जैसे बाप दादा गये छोडके, तैसे ही तू मर जायगा छोडी.
मारेगा काल चपेट अचानक. होय घडी में राख की ढेरी;
'सुंदर' ले चल रे कछु संगत, भूरा कहे नर मेरी रे मेरी.

राजा नमीराज को जब दाह ज्वर के दर्द की उज्वल वेदना होने लगी तब उसकी प्राणप्रिया राणीओं बहुत उपचार करने लगी तो भी कुछ आराम नहीं हुआ. तब बहुत राणीने उन को बावना चंदन लगाया तो थोडा बहोत

अच्छा लगा, इस लिये सब राज्ञीयाँ चंदन घिसने को लग गइ. सब के हाथ के कंकण के अवाज से राजा को और ज्यादा तकलीफ हुइ, इसलिये पटरानी ने सब को हुक्म कर दिया कि हाथ में एक से ज्यादा कंकण मत रखो. ऐसे करने से राजा को जरा आराम हुआ. तब राजा विचारने लगा कि—" रे जीव ! ज्यादे कंकण थे तब आवाज करते थे और मुझे भी दर्द करते थे. अब अकीला कंकण कुछ गरबड नहीं करता है. मैं भी अकीला आया था; परंतु इन सब औरतों, प्रजाजनों और धन आदि की सोबत हो गइ तो अब मैं दुःखी बना हूं. यह शरीर भी मेरा नहीं है. मैं तो केवल अक्षय, अव्याबाध, अविनाशी चैतन्य हूं; और शरीर, लक्ष्मी आदिक सब परपुद्गल हैं, बस ! इसी तराह भावना- में चड गया और आराम होने से साधु हो गया.

अब दूसरे आभ्यन्तर (भाव) वजन आश्रियं

कहते हैं—नमीराजने जब तक शरीर–स्त्री–राज्य आदि में मेरापणा माना था अर्थात् माया में लग रहा था तब तक दुःखी हुआ परन्तु जब माया को छोड दी—जब उस 'भाव बजन' को फैंक दिया तब उस को आराम हो गया. क्रोध–मान–माया और लोभ चारों, भाव बजन को जितना कमती करोगे उतना ही ज्यादा आराम होगा श्री दशवैकालिक सूत्र के आठवे अध्याय में कहा है कि:-

उवसमेण हणे कोहं । माणं मद्दवया जिणे ।
मायं च अज्जव भावेणं । लोभ संतोसओ जिणे ॥ ३८ ॥

अर्थात्–क्रोध को क्षमा से. मान को विनय से, माया को सरलतासे और लोभ को संतोष से हटाओ.

भाव वजन को कमती करने के लिये नीचे की ३ कुंजी यों अमूल्य हैः–

(१) एगो मे सासओ अप्पा, नाण दंसण लक्खणं ।
सेसुइमवायरा भावा, सव्व संजोगे लक्खणं ॥

अर्थ मैं अकीला हूं; अर्थात् और कोइ मेरा नहीं है. आत्मा शाश्वत है, इस का लक्षण ज्ञान—दर्शन है, जो बाह्या पदार्थ दिखने में आते हैं तथा जो सूक्ष्म पदार्थ हैं वे सब संजोग से उत्पन्न होते हैं और बियोग से बिखर जाते हैं. तो फिर पर पुद्गलका संयोग वियोग से क्या मोहित होना ? अर्थात् नहीं होना.

(२) एगोहं नत्थि मे कोइ ना हु मनस्स कस्सइ ।
एवं दीणमनसं, अदीन मन संचरे ॥

अर्थ मैं अकीला हूं; मेरा कोइ नहीं है; मैं किसिका नहीं हूं; ऐसा दीन मन से अदीन पने विचरे सो ही लाघवगुण का धणी होता है.

(३) आपा ज्याही आपदा, चिंता ज्यांही सोग. ।
ज्ञान विना यह न मीटे, जालम मोटे रोग ॥

अर्थ जब तक 'आपा' (ममत्व) है तब तक ही,

आपदा' भी है. परन्तु जब ज्ञान आता है तब वह जालम रोग-हमेश का भयंकर रोग दूर होता है.

इस पर थोडा विचारना चाहिये. जब कोइ मनुष्य मर जाता है तब मुझे दिलगीरी और दुःख नहीं होता है; परन्तु मेरा भाइ मरने से मुझे दुःख होता है; इस का क्या सबब ? अन्य जन में मुझे कुछ 'ममत्व' नहीं था. और मैं जिस को भाइ कहता हूं उस में मेरा ममत्व' था' यों अब प्रत्यक्ष समझा जाता है कि मुझे दुःख देनेवाला न तो मेरा भाइ है और न काल है परन्तु 'ममत्व' ही है.

और भी एक ज्यादे दृष्टांत से विचार करना चाहिये, कोइ मनुष्य समुद्र में स्नान करने के लिये जाता है वह जब डूबकी मारता है तब उस के शरीरपे कितना पानी फिर जाता है ? हजारों मन पानी ऊपर फिर जाने पर भी उस को उस का वजन नहीं लगता है. परन्तु

जब वह बहार निकल के उस ही जलमें से एक घडा पानी लेकर चलता है तब उस को वजन लगने लगता है किंवा नहीं ? अपितु लगता ही है. इस का सबब खुल्ला है कि, जब तक पानी पराया (समुद्र का) था तब तक वजन नहीं था, जब उस को मेरा बनाया तब उस का वजन हो गया ! यह वजन पानी का नहीं परन्तु ममत्व का ही है.

ऐसे ही जगत् में जो जो चीजों हैं वे सब पर पुद्गलों की है. वो कुछ अपन को दुःख नहीं कर सकती है परन्तु जब उस मे अपन ममत्व का आरोप करेंगे तबही वह दुःख दायक बन जायगी. !

सब मनुष्यों त्यागी नहीं बन सकते हैं. तो भी जो लोक संसार में स्थित होकर भी ममत्व का वजन जितना कमी करते हैं उतनाही उन को ज्यादा सुख होता है.

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा ॥
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति सर्वदा ॥

अर्थ-जैसे पानी में उत्पन्न होनेवाले कमल पानी से भिन्न ही रहते हैं, ऐसे ही आत्मा को देह से और सब पुद्गलों से भिन्न समझ कर संसार मे गति करना, अर्थात् माया जल में लिप्त नहीं होना !

आनदरूपं परमात्मतत्त्वं । समस्तसंकल्पविकल्पमुक्तं ।
स्वभावलीना निवसंति नित्यं । जानाति योगी स्वयमेव तत्त्वं ॥

इस मुजब जो लोग किसी भी चीज में लुब्ध नहीं होते हैं, वे संकल्प विकल्प रहित. आनंद रूप, परमात्म तत्त्व स्व स्वभाव में मग्न हो योगी माफीक बन रहते हैं,

परमपुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी कृत धर्मतत्त्वसंग्रह का पांचवा-लघुता नामक प्रकरण समाप्तम् ॥ ५ ॥

प्रकरण छठा—सच—सत्य.

"सत्यात् नास्ति परो धर्मः"

सत्यान्न प्रमादितव्यम् । धर्मान्न प्रमादितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमादितव्यम् ॥

उपनिषद.

अर्थ—सत्य से मत चूको, धर्म से मत चूको, कुशल से मत चूको, भूति (आबादी) से मत चूको, स्वाध्याय और प्रवचन से मत चूको, क्यों कि—सत्य है सो ही धर्म है, सो ही कुशल है, सो ही भूति है, सो ही स्वाध्याय है, और सो ही प्रवचन है.

A noble heart doth teach a virtuous scorn
To scorn to owe a duty overlong
To scorn to be for benefits foreborne,
To scorn to lie, to scorn to do *a* wrong,
To scorn to bear an injury in mind,
To scorn a freeborn heart slavelike to bind,

Lady Elizabeth Carew.

सत्य वचन और दीनता, पर स्त्री मात समान;
उन को स्वर्ग जो न मिले, तो 'तुलसीदास' जमान !

प्राणी स्वभाव से—जन्म से सत्य को चाहता है. एक छोटे बालक को भी कोइ 'झूठा' कहे तो वो भी रोदेता है. कोई बडा आदमी को झूठा कहे तो वो मारने को दौडता है अथवा तो अदालत में फर्याद करता है. इस से समझा जाता है कि किसी को असत्य पसंद नहीं है; सब सत्य के रागी हैं.

मनुष्य की बात तो दूर ही रहने दो; पशु पक्षी को भी सत्य प्रिय है. कितनेक पशु पक्षी ऐसे हैं कि जब उन की जात में से कोई बूरा काम करता है तब सब इकट्ठे होके उस को शिक्षा पहुंचाते हैं.

इस तरह मनुष्य और पशु पक्षी सब को सत्य वचन और सत्कार्य ही पसंद हैं. इस से समझाजाता है

कि सत्य है सो समाज का रक्षक है ("Truth is the very boud of Society"). सत्य है वो ही धर्म है. कोई धर्म ऐसा नहीं है कि जो असत्य का उपदेश करे. सत्य वचन, सत्य विचार, सत्य कार्य. उस को ही धर्म कहते हैं. जैन लोग उस को त्रियोग शुद्धि कहते हैं, कि जो धर्म का मूल है. अंग्रेज लोग उस को CHARACTER (शुद्धवर्तन) बोलते हैं कि जिस में वचन (Word) विचार (Thought) वर्तन (Deed). तिनों की शुद्धिका समावेश होना है. पारसी लोग 'मनस्नी', 'गवस्नी' 'और' 'कुन्स्नी' तीनों का समावेश सत्य में करते हैं.

सब गुणोंमें प्रधान गुण 'सत्य' ही है. सत्य बिन सब गुणों निरर्थक है, जैसे कि बिना कीकी चक्षु निरुपयोगी हैं. पंडित जन दुनियामें मान पाते हैं, चतुर जन मान पाते हैं; परन्तु यदि वो पंडीत और चतुर में सत्य का गुन न होवे तो गमारसे भी तुच्छ गिने जाते हैं

जिन्दगी में बुद्धि से भी सत्यज्यादा कामका है; और विद्वतासे इन्द्रिय निग्रह बहुत कामका है.

सरहेनी टेलर सच कहता है कि– " सत्य है वोही शाणपण है. " सत्यसे मनुष्य शीघ्र उंची पद्दी नहीं पाता है, परन्तु आसते क्रमशः बढता है. इसी तरह चडने वाला मनुष्य पडता नहीं है. कभी कभी सच्चे मनुष्यको लालचों ललचाती हैं, कभी शत्रुओं सताते हैं, कभी निर्धनता आदि संकटों दुःख देते हैं; परन्तु "सत्यात् पथः न प्रविचलान्ति धीराः" अर्थात् धीर पुरुष सत्यसे एक तील मात्र भी चलित नहीं होते हैं. हरिश्चन्द्र, राम, सीता, दमयंती आदिके चरित्र सब धर्मके लोग जानते हैं, और उनकी प्रशंसा आजतक कर रहे हैं. उसका यह ही सबब है कि वे लोग सत्य में बराबर दृढ रहे थे.

सत्यमें शूरत्व-बहादूरी आती है; कुछ कायरपने का

काम नहीं है. सत्य पहीला तो मनुष्यको डराता है और झूठ अव्वलमें मोहमय दीखता है. जो बहादूर नर होगा वोही झूठको छोड के—उसकी सब लालचोंमें ध्यान नहीं देके सत्यको ग्रहण करेगा. सच्चा मनुष्यको मुखमें और शब्द में शौर्य है. वह जीधर जाता है उधर सब मनुष्य में उसका ताप लगता है. सब उसका कहना अंगीकार करते हैं. युरोपमें ल्युथर नामका धर्मसुधारक हुआ उसका इतिहासकार कहता है कि—'ल्युथरका एक शब्द आधी लडाइ तुल्य था.' ऐसे ही महावीर देव और और धर्मके महापुरुषों जीधर जाते थे उधरके लोगों उनको सन्मान देते थे और उनके फरमान मुजब चलने को कटिबद्ध हो जाते थे.

लश्कर, ज्ञाति, धर्म, शाला, सभा आदि संस्थाओं में अग्रेसर मनुष्य सच्चा होता है तो सब मनुष्यों में उसकी छाप नहीं है और सब झूठको धिक्कारते ही चलते हैं.

इसी तराह सच्चाइ मे लोहूचंबक (Magnet) का गुण है.

याद रहना चाहिये कि, सत्य सीर्फ बचन में ही न होना चाहिये, परन्तु मन- बचन और क्रिया तिनों में होना चाहिये. जब तीनों होंगे तब सत्य कहा जाता है. सच्चा आदमी बुरे विचार को मगज में प्रवेश नहीं करने देता है. क्यों कि थीओसोफीका अभिप्राय ऐसा है कि हरएक विचार मगज में जाकर जीवनमय आकृति धारण करता है और इस से भला वा बुरा कार्य होता है.

जिस की प्रजा का निपात-विनाश होने वाला होता है वह प्रजा अव्वल तो विचार में भ्रष्ट होती है. देश मरे किंवा जीवे उस की उस को कूछ दरकार नहीं रहती हैं; कोइ अच्छा कहे या बुरा कहे उस की भी दरकार नहीं रहती है; सच्च और झूठ में कुछ तफावत दीखा जाता नहीं हैं. पीछे बचन में झूठ आता है और पीछे वर्तन में भी झूट आजाता है, बस ! जब तीनों ही असत्य इकट्ठे हुए तब प्रजा की अधोगति होने में क्या

कुछ देरी लगती है ? देखिये ! इस भारत की हालत कैसी है ? व्यापारी लोग अपने लडके को पढाते हैं कि- बिना झूट व्यापार हो ही नहीं सकता हैं; कामदार लोग कहते हैं कि- बिना रुसवत (लांच) गुजरान ही नहीं चल सकता है. ऐसे देश की उन्नति किस तरह हो सके? जब तक सब भारत वर्षीय प्रजा अपने पूर्वजों की सत्कीर्ति को याद कर सच्च बोलना-सच्च विचारना- और सच्च वर्तना नहीं सीखेंगे तब तक इस देश की उन्नति कभी नहीं होगी. सच्चा मनुष्य अमर है. हजारों वर्षों पर होगये तीर्थंकरों, गणधरों, तत्वज्ञानिओं और सतीयों का शरीर हयात न होने पर भी उन सब के नाम और काम हयात हैं. उन के नाम से मनुष्य संसार सागर में तीरते हैं

सच्च सच्चको और झूठ झूठको पुष्टी देता है. एक वार सच्च कहनेकी मुशीबत दूर हो गइ फीर दुसरी वार सच्च कहनेमें मुशीबत कमी होती है. ऐसे ही झूठ भी एक वार बोलनेसे दुसरी वार झूठ की टेव (आदत)

हो जाती है. दुष्ट शब्द, कार्य किंवा विचारों को प्रथम प्रवेश ही नहीं करने देना चाहिये. अव्वलमें थोडी तकलीफ होगी परन्तु हमेशकी तकलीफ बच जायगी. दुःखांत सुखं " अर्थात् तकलीफ के पीछे सुख होता है.

अब मैं शब्द, विचार और कृत्य की सचाइ का पृथक् पृथक् विवेचन करूंगा.

शब्द—सत्य वचन उस को कहते हैं कि,—१ जो अतथ्य न हो, २ जो अपथ्य न हो और ३ जो अप्रिय भी न हो. जैसे १ मेरी पास सर्फि ५-७ सूत्रों का ज्ञान हो और मैं कहूं कि मैंने तो सब शास्त्रों पढे हैं. तो मेरा बोलना 'अतथ्य' है, इस लिये झूठा है. जैसा होवे वैसा ही कहूं तो 'तथ्य' है, कमी जास्ती कहूं तो अतथ्य है. (तथ्य=तथा रूप) २ पथ्य वचन उस को कहते हैं कि—जिस से आखीर में लाभ ही होगा. बिना हित का कहना अपथ्य है. और ३ जो बात सची होने पर भी

कहने से किसी की आत्मा को दुःख होवे तो वह 'अप्रिय' वचन होने से 'असत्य' गिना जाता है. अंधे को * अंधा कहने से उस विचारे को क्लेश होता है. इस लिये कभी ऐसे जनोंकी साथ काम पडे तो युक्ति से पूछना चाहिये कि भाइजी ! आप की आंखो के कितने कालसे दर्द हुआ ? तो वह खुशी से हाल कहदेता है. ऐसे ही कठिन बात को मधुर बनाने की आदत डालना.

बडे बडे पंडीत लोग भी ऐसे होते हैं कि—जो सत्य कहते हैं तो भी असत्य जैसी असर करते हैं. गुस्सा में आ कर तीव्र शब्दों या व्याजोक्ति से सुनने वाले को कारी

---

* श्री दशवैकालिक सूत्र में अध्याय ७ वे में कहा है कि—

तहेव काणं काणेत्ति । पडग पंडगे त्ति वा ॥
वाहियं वावि रोगित्ति । तेण चोरे त्तिणोवए ॥

काणाको काणा, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोर को चोर न कहना,

दोहा—काणे को काणा कहे, से कडवा लगता वेण ॥
धीरे मधुरे पूछीये, भाई कैसे फुटा नेण ॥ १ ॥

घा जैसे लगते हैं. ऐसे लोग की सत्य फेलाने की मुराद हांसल नहीं हो सकती है. तीर्थंकर देव हमेशा सत्य ही बोलते थे, कभी लेश मात्र असत्य नहीं कहते थे; परन्तु खुबी यह है कि-उन के शब्द से लुच्चे, चोर, दुष्ट, व्यभिचारी, अधर्मी आदमीओं को भी कभी क्लेश नहीं होता था, अपितु उन को भी तीर्थंकर देव का वचन शांतलकारी होता था. अंग्रेज विद्वान 'कार्लाइल' ने कहा है कि—"जो मनुष्य अपनी आत्मा और जबान पर काबु नहीं रख सकता है वह चाहे जितना पंडीत होवे तो भी कुछ स्मरणयोग्य काम नहीं कर सकता है."

'पीथागोरास' कहता है कि' Be silent or say something better than silence" "मौन रहो अथवा चुपकी से अच्छा होवे ऐसा कुछ बोलो." 'ज्यॉर्ज हर्बर्ट' कहता है कि " Speak fitly or be silent wisely " " देश कालादि देख कर बराबर बोलो, किंवा शाणे होकर मौन रहो."

वेद भी पुकारता है कि—"सत्यं ब्रूहि, प्रियं-ब्रूहि" अर्थात् सत्य ऐसा बोलो कि जो प्रिय भी होवे.

तो भी कभी समयानुसार सख्त होने की भी जरुरत पडती है. जो सत्य के आशक हैं वे तो असत्य को सहन नहीं कर सकते हैं. क्रोध, निर्दयता, लोभ, मोह, मद, आदिका विचार उन की समक्ष आता है तब वे उस की तर्फ क्रोध भी करते हैं. क्रोधादि दुर्गुणों को तो क्रोध से ही हठाना चाहिये अर्थात् आत्मा के दुर्गुणों पर क्रोध कर उन को निकाल देना चाहिये !

प्रियवादी विद्वज्जनों भी कभी कभी सख्त वचन बोलते हैं; उन के हेतु की तरफ दृष्टि रखनी चाहिये. पर्थीस (Perthis) कहता है कि:—"I would have nothing to do with the man who cannot be moved to indignation" अर्थात् "मैं ऐसा मनुष्य को नहीं चाहता हूं कि जो असत्य की तरफ गुस्सा न करे."

लोक प्रियता का असाधारण प्रेम और लोक-निंदा का डर के लिये मनुष्य सच्ची बात कहने में डरते हैं, ऐसे आदमी जनसमाज का कुछ हित नहीं कर सकते हैं. सच्चा ज्ञान का फैलाव करने के लिये श्री महाबीर स्वामी पर गोशालकने तैजोलेश्या डाली थी, संघपट्टक के कर्ता सूरीको भी मरना पडा था, लवजी ऋषि के शिष्य को तरवार से मारे थे, दयानन्दसरस्वती को जहर से मारे थे. 'सोक्रेटिस' को मरना पडा था; 'ब्रनो'को जला दिया था; 'रोजर बेकन' को कैद करके मार दीया था; 'स्पीनोझा' को खुद उस के याहुदी भाइओंने बहुत ही सताया था; परन्तु वो सब तत्ववेताओं सत्यका उपदेश करने में चुस्त (दृढ) रहे थे.

तो भी हद में रहना चाहिये. 'सत्य कथन की हिमत' (Moral Courage) और 'अप्रिय असत्य' उन दोनों के विच में अंतर बहुत थोडा है, कभी जरा ज्यादे

खिजाने बने तो 'अप्रिय असत्य' का गुन्हेगार हो जाते हैं. ज्यों ज्यों मनुष्य को अनुभव और ज्ञान मिलता है त्यों त्यों वह प्रिय और सत्य कहने की खुबी समझता है.

अब झूठ वचन का भी थोडा स्वरूप दिखाउंगा. खुल्ले झूठ को तो सब कोई पीछानते हैं. परंतु कितनेक तरह के झूठ को नहीं पीछानने से भूल हो जाती है. जैसे (१) कितनेक लेखको, ग्रंथकारों, वक्ताओं, उपदेशकों छोटी बात को बडी और रज को गज करते हैं. यह बडा भारी झूठ है. ऐसे लोग कहते हैं कि—हम शुभ आशय से बोलते हैं, इस लिये हम दोषी नहीं होते हैं. परंतु यह कहना भी झूठ है. क्या सक्कर नहीं होने से नीमक खाया तो मुख मीठा होगा? कितनेक पुराणों और ग्रंथ के बनानेवाले लोगोंने जगत में व्हेम और पाखंड को फेलाये हैं. एक कहता है कि—भगवानने जिन

स्त्रीयों की साथ जार किया वे सब स्त्रीयों को मोक्ष मिली क्यों कि—भगवान का प्रेम पाया वही बडे भाग्य की निसानी है ! अब देखिये ! क्या तो भगवान का प्रेम और क्या व्यभिचार ! भगवान का प्रेम प्राप्त करना यह अच्छी बात है परंतु उस को बढाकर व्यभिचार करने तक उपदेश किया यह कैसी मूर्खता है ?

भगवान की पूजा करना अर्थात् मन में उनपे प्रेमभाव रखना, इस बात को वढा कर कितनेक लोग अशरीरी भगवान की मूर्ति बनाते हैं, × जोग मुद्रा को मूर्ति को भोग लगते हैं, सचित्त के त्यागी कहकर पुष्प फल चढाते हैं, धूप दीप करते हैं, वाजा बजाना नाचना

× ध्यानधूपं मनः पुष्पं, पंचेन्द्रिय हुतशनं ॥
क्षमा जाय संतोष पूजा, पूजा देव निरंजनम् ॥

अर्थ-पंचेन्द्रिय निग्रह रूप अग्निमें ध्यान रूप धूप क्षेप कर मन निग्रह रूप फूल चढाकर. क्षमा रूप ताप और संतोष रूप २ नैवद्य चढाकर निरंजन देव की पूजा करो.

आदि अनेक ढोंग करते हैं. देखिये ! सच्ची पूजा का उपदेश तो दूर ही रहा परंतु पाखंड को कितना फैला दिया है. कोई कहता है कि—गौ के शरीर में क्रोडों देव रहते हैं; इस लिये गौ की सदैव भक्ति करना. अब इस में बात इतनी ही है कि गौ दूध देती है, उस के संतान (बेल) खेती करते हैं, इत्यादि सैंकडों तरह के हित गौ से होते हैं इस लिये गौ को अच्छी तरह से पालना चाहिये. इस बात को बढा कर गौ के शरीर में क्रोडों देव का वास ठहरा दिया और उस की पूजा का उपदेश कर दिया !

जल स्नान से, देशाटन से, इत्यादि कार्य से शारीरिक लाभ होते हैं परन्तु इस बात को बढा कर कितनेक ग्रंथकारोंने उपदेश किया की यात्रा और तीर्थ स्नान से स्वर्ग मीलता है और काशी (बनारस) में जाकर मरने से मोक्ष मीलती है ! यह सब अतिश-

योक्ति (exaggeration) को बडा भारी झूठ कहा जाता है. कोइ चीज में जीतना गुन होवे उतना ही कहना चाहिये, ज्यादे कहने से मनुष्य दोषित होता है. (२) तुच्छकार युक्त वचन भी असत्य वचन है. (३) काल विरुद्ध भाषा भी असत्य गिनी जाती है. जैसे कि, लग्न के अवसर में " राम बोलो ! " ऐसा बोलने से लोक मूर्ख कहेंगे. (४) जो वचन सून के किसी को भारी संताप होवे ऐसा वचन भी असत्य है. (५) जिस वचन से कोइ व्रतधारी का व्रत शिथिल हो जावे ऐसा वचन भी असत्य है. (६) दुष्टों का गुणकथन और निष्प्रयोजन बातों (गपोडें) भी असत्य में गीने जाते हैं. (७) किसी की निंदा और चाडीचुगली भी असत्य है; पराया छीद्र खूला करना और आप की वडाइ करनी वो भी असत्य है. (८) हांसी–मश्करी में असत्य बोलनेवाले मनुष्य की सच्ची बात भी कोइ नहीं मानता

है. और हांसी से कभी किसी का मृत्यु भी नहीं होता है. (९) ज्यादे प्रवाद करना, बोल बोल करना वो भी एक प्रकार का असत्य है. जिस शब्द से किसी प्रकार का किसी से हित नहीं होता है ऐसा शब्द बोलना नहीं चाहीये.

विचार—सब तराह के दुष्ट विचारो को मगज से दूर रख ना चाहिये. विचार में असत्य दाखल होने से वर्तन भी ऐसा होता है. इस लिये अच्छे विचारों प्राप्त करने की कोशीश करना. सज्जनों की संगत, उत्तम ग्रंथकारों- के पुस्तकों और शास्त्रों का पठन—पाठन इत्यादिक प- रिचय रखना. स्वदेश प्रेम, स्वधर्म राग, प्राणी मात्र में मैत्रीभाव इत्यादि तरह के विचारों को मगज में इकट्ठे. करना.सत्य विचारोंके प्रभावसे मनुष्य चाहेसो करसक्ताहै

क्रिया-सत्य क्रिया के लिये इतना कहना बस है कि:—सब जीवों को आप की बरबर गिन के चलो;

कीसी को दगा मत दो; कीसी को दुःख मत उपजाओ; झूठी गवाही [साक्षी] मत दो, झूठा खत मत करो; बन सके तो परमार्थ करो; भलाइ और नेकी की कीर्ति करो:बस ! वही कायिक सत्य है.

अब मैं बताउंगा कि सत्य से क्या लाभ और असत्य से क्या गेरलाभ होता हैं.-लोगो भी कहते हैं कि-'सच्चे का बोल बाला झूठे का मुह काला" असत्य से कोइ विश्वास नहीं रखता है. असत्य से लक्ष्मी का नाश होता है. कभी असत्य से थोडा बहुत द्रव्य मिल-जाता है तो वो द्रव्य अपने खजाने में जाकर अपने द्रव्य को भी साथ में लेकर भाग जाता है; अर्थात् असत्य से मिला हुआ धन पहीले का धन का भी नास करता है. असत्य से परभव में भी दुःख होता है.

सत्य से लोक में कीर्ति, कभी कभी धन का लाभ, परलोक में सुख आदि लाभ होते हैं. परन्तु सब से बडा

लाभ तो सत्य से यह होता है कि सत्यवंत मनुष्य का हृदय सदैव आनंद में रहता है. वो कीसीसे डरता नहीं है. और भी कहा है कि-सत्ये नोत्पद्यते धर्म ॥ अर्थात् सत्य से ही धर्म की उत्पत्ति है, अखीर सत्यतीरे, सच्चे का वाली साहिब. यों व्यवहार में भी सत्य के अनेक गुण बताये हैं,

परमपूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदायके
बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋषिजी कृत धर्म तत्त्व
संग्रह का 'सत्य' नामक छट्ठा प्रकरण समाप्तम्

प्रकरण सातवा-संजम-संयम.

विमुत्ता हु ते जणा, जे जणा पारगामिणो, लोभं अलोभेण दुगंछमाणे, लद्धे कामे णाभिगाहइ, विणावि लोभ निक्खम्म, एस अकम्मे जाणति पासति । पडिलेहपुए णावकंखति.

श्री आचारांग सूत्र-

अर्थः-उन ही पुरुषों को सच्चे विमुक्त समझना कि जो संजम को सदा पाल लोभ का तिरस्कार कर के निर्लोभी होकर काम भोग को वांच्छे नहीं अथवा अव्वल में लोभ को निर्मूल कर के पीछे दीक्षित होवे, वह कर्म रहित बन कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी होवे.

जैसे समुद्र में चलने वाले जहाज में छिद्र होने से पानी अंदर आता है और आखीर जाझ डूब जाता है, ऐसे ही संसार रूपी समुद्र में शरीर रूपी जहाज है, जिस में आश्रव (पाप आने का रस्ता) रूप छिद्र पड़ने से

पाप रूप पानी आके शरीर में बैठा हुआ आत्मा को संसार समुद्र में डूबाता है. जब तक वह आश्रवद्वार (आश्रव छिद्र) बंध नहीं किया जाता है तब तक पाप समय २ आता ही रहता है; क्षण मात्र भी बंध नहीं रहता है. वे आश्रव ५ प्रकार के होते हैं: यथा १. "मिथ्यात्व आश्रव" झूठा को सच्चा माने और सच्चा को झूठा माने, इस में मिथ्यात्व आश्रव लगता है, इस के २५ भेद हैं, जिस में मुख्य पांच हैं:-

(१) अभिग्रीहक मिथ्यात्व (२) अनभिग्रहिक मिथ्यात्व (३) अभिनिवेषिक मिथ्यात्व; (४) संशयिक मिथ्यात्व (५) अनाभोग मिथ्यात्व,*

---

* जिस किसी मनुष्य को सच्ची दलील दाखले से सत्य धर्म का स्वरूप समजाने पर भी लोह वणिक की तरह अपना हट्ट दाग्रह का त्याग नहीं करे वह अभिग्रह मिथ्यात्व, २ जो मनुष्य भोलपन से खल और गुड एक माने तैसे सर्व मतान्तरों वगैरह को सब देव गुरु को एक सेही माने वह अनाभिग्रह मिथ्यात्व. ३ कोई वितराग धर्मानुयायी शास्त्रवेता होकर द्रव्यादि की लालच से अथवा अपनी भूल को छिपाने के लिये इत्यादि किसी आशय से वीतराग

२. "अव्रत आश्रव":—पांच इन्द्रियों और मन से पृथ्वी आदिक छ कायका बंध करने का प्रत्याख्यान न होने से अव्रत आश्रव लगता है.

३. "कषाय आश्रव":—इस के चार प्रकार हैं: (१) क्रोध कषाय, (२) मान कषाय, (३) माया कषाय और (४) लोभ कषाय,

" प्रमाद आश्रव ":—इस के ५ प्रकार हैं; (१) मद [अभिमान]; (२) विषय [पंच इन्द्रिय के सुख] में लुब्धता (३) कषाय (४) निद्रा; तथा पर की निन्दा और (५) विकथा,

५ " योगाश्रवः "—उस के ३ प्रकार हैं.

कथन को उत्थापकर उत्सूत्र प्ररूपे वह अभिनिवेशिक मिथ्यात्व. ४ वीतराग के निरापेक्ष वचनों में शंकालावे कि यह सत्य नहीं और उन का निराकरण करने की दरकार नहीं करे सो संशयिक मिथ्यात्व. और ५ जिस को धर्म अधर्म का कुच्छ भान नहीं होवे ऐसे अज्ञानी जीवो का अनाभोग मिथ्यात्व.

(१) मन से किसी का बुरा चिंतवे सो; (२) वचन से किसी को बुरा कहे सो, (३) काया से अयोग्य कृत्य करे. सो. यों अशुभयोग से पापाश्रव होता है और अच्छे विचार उच्चार आचारव से पुण्याश्रव होता.

ऐसे ५ आश्रव शरीर रूपी जहाज को संसार सागर में डुबाने के लिये पापरूपी पानी आने के द्वार हैं, कि जो हरघडी खुले ही रहते हैं.

उन पांच आश्रवों के प्रताप से इस जीवने चार गति चौवीस दंडक और ८४ लाख जीवायोनिके विषे अनंत पुद्गल परावर्तन कीये हैं; और परतंत्रतासे अनेक दुःख सहन किये हैं; जैसे कि—

नरकवास के दुःखों.

अनंत क्षुधा, अनंत तृषा, अनंत ठंड (शीत). अनंत ताप, अनंत रोग, अनंत शोग, अनंत भय, अनंत परतंत्रता अनंत मार और अनंत परवशता. यह १०

प्रकार की तो क्षेत्र वेदना शाश्वती होती है.

और १५ जातके परमाधामि अहोनिश मारताड कर रहे हैं, कोइको मार मारके हड्डी ढीली कर देते हैं, कोइको अग्नि में जलाते हैं, कोइका शस्त्रसे छेदन भेदन करते हैं. कोइको करोडो मणका बजन गरदनपर रखदेते हैं; कोइका चीमटेसे मांस चुंटते है, कोइको तेलकी कडाइ में तलते हैं, कोइको पोलादकी गरम पूतली से आलिंगन कराते हैं, कोइ को तरुआ सीसा उकलता २ पिलाते हैं. इत्यादि प्रकार के असह्य दुःख परमाधामीओं दे रहे हैं. इस जीवने उन सब प्रकार की वेदना अनंत बख्त सहन की है.

तिर्यंच योनि के दुःखों.

पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवोंको पल पल में कितनी छेदन–भेदन–ताडन–तापन

खांडन—पीसन—इत्यादिक वेदना सहन करनी होती है, वह सब कोइ जानता ही होगा. उन बेचारे को क्षण मात्र भी आराम नहीं है. बेइन्द्रिय, तेंद्रिय, चौरिन्द्रिय, जीव (जळो, जूं; खटमल, बींछु इत्यादि) को भी कितने लोक सताते हैं, मारते हैं. और पंचेन्द्रिय-जलचर जीवों-मच्छी आदि स्थलचर जीवों—गौ; गद्धा, बेल आदि, खेचर जीवों—तोता चिडी आदि पक्षी; उरपर जीवों सर्प दि और भुजपर उंदर आदि. इन योनि में अनेक अनेक वख्त जन्म लीया है. और परतंतता से शीत-ताप, मारन-ताडन इत्यादि महा दुःख सहन किये हैं.

मनुष्य के दुःखों.

मनुष्य योनि में भी दुःखों बहुत हैं—अव्वल तो गर्भावास में अनेक प्रकार की पीडा होती है. जन्म और मृत्यु की वख्त भी उज्वल वेदना होती है. उन के सिवाय भी, आधि, व्याधि, उपाधि, वृद्धावस्था आदि का

दुःख भी अकथनीय है. तैसे ही बहुत से नौकरादि पराधीनता से और गरीबों अन्न वस्त्रादि न मिलने से बहुत दुःखी हो रहे हैं.

देवताओं के दुःखों.

देवता में अभोगी-नोकर देव होकर दुसरे का सदा हुकम उठाते हैं. गले में ढोलक डालकर इंद्रादिक के सामने नाचते हैं. अन्य अधिक ऋद्धिवाले देवों को देखकर झुरते रहते हैं. चोरी-जारी करने से इन्द्र वज्र प्रहार की शिक्षा देता है जिस से ६ महिने तक असह्य-वेदना सहन करनी पडती है. और मरकर अधोगति में जाने का गर्भवास में रहने का भी बहुत दुःख वेदते हैं.

इसी तरह चौगति में इस जीवने अनेक बख्त दुःखों सहन कीये हैं. अब अनन्त पुण्योदय से इन दःखों से पार करनेवाली मनुष्य जन्म आदिक दश

बोल की जोगवाइ * मीली है, तो फीर चौगति का भ्रमण करना नहीं पडे ऐसा कुच्छ कार्य करना चाहिये. वह कार्य आश्रव द्वार को निरुंधन कर संवर निर्जरा रूप धर्म धारन करने से होता है.

आश्रव द्वार को बंध करने के लिये 'संयम' ही उत्तम साधन है. हिंसादि पांच आश्रव हैं उन का त्याग कर अहिंसादि पांच महाव्रत धारन करना सो ही संयम है. जब नियम कर लिया कि विश्व के सब जीवों को मैं अभयदान देता हूं, मेरी आत्मा सरीखी सब की आत्मा हैं ऐसा

---

* दश प्रकार की जोगवाइ का वर्णन एक कवित मे किया है—

मनहर.

मानव का[१] जन्म लेय, आर्य क्षेत्र[२] पय, उत्तम[३] कुल में जन्मेय, आयूपूरो[४] पामीया ॥ इन्द्रपूर्ण[५] निरोगी-काया[६] लक्ष्मी के भोगी, साधु[७] की संगत जोगी, मिली इस ठामीया ॥ सुण के सुत्र[८] धार श्रद्धा[९] को भलीपर, यथाशक्ति[१०] करणी कर, न कीजे निकामीया ॥ अमूल्य दश जोगवाइ मिली पुण्योदय भाई, त्वरा लेना हो कमाट, शिव सुख पामीया ॥१॥

जानकर मैं कोई भी छोटा मोटा जीव को लेश भी मन-वचन और काया से दुःख नहीं दूंगा, ऐसे ही झूठ नहीं बोलूंगा चोरी नहीं करूंगा, मैथुन नहीं सेवूंगा, परिग्रह न रखूंगा, ऐसा नियम कर लिया अर्थात्-अपने आत्मा को अपनी काबु में ले ली, उस को ही संयम कहते हैं.*

संपूर्ण संयम तो त्यागी (साधु) का ही होता है. संसारी जन संयम पूर्णपने पाल सकते नहीं है. क्यों कि उस को तो स्त्री—पूत्र आदि लगे हैं. उन के निभाव के लिये हिंसा के कार्य करने ही पडते हैं. तो भी संसारी मनुष्य बहुत तरह की हिंसा से दुर रह सक्ते हैं और उतने दरज्जे संयम पाल सकते हैं. संसारी के लिये १२ व्रत मुकरर किये गये हैं. इस से उन के संसार व्यवहार में कुछ हरकत नहीं होती है.

* यम = to restrain काबु में रखना; अपने मन-वचन और काया को स्वतंत्र गति करने से रोकना और अपनी काबु मे रखना उस को ही 'संयम' कहते है.

समणुजाणेज्जा, जस्से ते पुढविकम्म समारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्तिबेमि"।

अर्थात्—"ऐसा जानकर बुद्धिमान पुरुषोंको पृथ्वीकाय की हिंसा करनी नहीं, अन्य कीसीकी पास करानी नहीं और जो कोइ पृथ्वीकाय की हिंसा करता हो उस की अनुमोदना भी करनी नहीं अर्थात् अच्छा भी जानना नहीं. जो प्राणी पृथ्वीकाय की हिंसा को अहितकारक समझ कर इस का त्याग करे उस को ही 'मुनि' साधु कहना."

(२) अप्काय संयमः—अर्थात् पानी के जीवों का संयम. नदी, समुद्र, सरोवर, वर्षाद का पानी, ठार. बरफ (हिम), कूवा आदि जलाश्रय का पानी इत्यादि जल के बहुत प्रकार हैं. जल के एक बुंद में असंख्यात जीव हैं; उस में से एक एक जीव नीकल के भ्रमर जितनी काया करे तो संपूर्ण जंबुद्वीप में उन का समावेस नहीं हो सके पृथ्वीकाया से भी अपकाय के जीव बहुत सूक्ष्म हैं श्री आचारांगजी में कहा है कि:—"अपकाय का आरंभ

अवश्यमेव कर्मबंध का हेतु है, मृत्यु का हेतु है, नरक का हेतु है. तथापि मनुष्यों कीर्ति–मान पूजा के लिये जन्म मरण से छूटने दुःख का प्रति घात करने आदि के लिये अपकाय (पानी) के जीवों को शस्त्रादि से मारते हैं. और उन की साथ में रहे अन्य जीवों को भी मारते हैं. वह अप्काया की घात उस घातक को अहित की अबोध की करने वाली होती है.

(३) अग्निकाय संयमः—चकमक की, चुले की, बिजली की, भट्ठी की इत्यादि अनेक प्रकार की अग्निकी एक एक चीणगारी में असंख्यात जीव हैं; उस में से एक २ जीव नीकल के राइ जितना शरीर करे तो सारा जंबुद्वीप में समावेश भी नहीं होता है. अपकाय से भी अग्निकाय के जीव बहुत सूक्ष्म हैं. श्री आचारांग सूत्र में कहा है कि:—"कितनेक लोग कहते हैं कि–हम

'अनगार हैं'* परन्तु यह मिथ्यावाद है. क्यों कि अग्नि काय और उसको साथ अन्य अनेक जीवोंकी हिंसा वे लोग कर रहे हैं. वे साधु किसी भी प्रकार नहीं होते हैं.

(४) वायुकाया संयमः—तेउकाया अर्थात् अग्नि-काया के जीवों से भी वायुकाया के जीवों अति सूक्ष्म हैं. सरसव जितना शरीर करे तो जंबुद्वीप में समावे नहीं, भगवानने आचारांग सूत्र में कहा है किः—

सूत्र—इमस्सचेव जीवियस्स परिवंदण माणण पूयणाए, जाइ-मरणमोयणाए दुक्ख पडिघायहेउ से सयमेव वाउसत्थं समारंभंति, अन्नेहि वाउसत्थं समारंभावेंति, अन्ने वा वाउसत्थं समारंभमाणे समणु जाणाति, ते सं अहियाए, तं से अबोहिए ॥

अर्थात्—" जो लोग इस क्षणिक जिंदगी के लिये, मान कीर्ति के लिये, उदर निर्वाह के लिये, जन्म मरण से मुक्त होने के लिये, और दुःखों को दूर करने के लिये

* यह सब बातें साधु मार्ग के लिये हैं. तो भी संसारी जनों भी १७ प्रकार के संयम में से थोडा बहुत पाल सकते हैं.

वायुकाया की हिंसा करते हैं, कराते हैं, और अनुमोदते हैं, उन लोगों की इस प्रकार की हिंसा आखीर में अहितकर्त्ता और अज्ञान को बढानेवाली होती है.

(५) वनस्पतिकाया संयमः—वृक्ष, पत्त, पुष्प, वेल, फल, बीज, कंदमूल इत्यादिक को वनस्पति कहते हैं. उस में जो अनाज (धान्य) है उस के एक एक दाने में एक एक जीव है; भाजी लीले फल—फूल इत्यादिक में असंख्यात जीव हैं. और जमीन की भीतर उत्पन्न होनेवाले कंदमूल (कांदे, गाजर, सकरकंद इत्यादि) हैं उस में तथा लीलन फूलन में एक सूइ की अग्रपर आवे इतने भाग में अनंत जीव रहे हैं. श्री आचारांगजी में कहा है कि-मनुष्य की माफिक वनस्पति भी सजीव है; क्यों कि मनुष्य का शरीर की माफिक वनस्पति भी पेदा होनेवाली चीज है, उस की माफिक ही बढती है, मनुष्य की माफिक वो भी आहार करती है, प्रतिक्षण उस का रूपान्तर होता है

वगैरह, वगैरह. इस लिये साधु वनस्पति काया की हिंसा कभी नहीं करता है, नहीं कराता है और नहीं अनुमोदता है."

सब प्रकार के जीवों की हिंसा के बारे में भगवानने उक्त तरह ही कहा है. तो भी कितनेक साधुअें धर्म के नाम से मंदिर बनाने का, पुष्पादि से पूजा करने का और हजारों तरह की हिंसा का उपदेश करते हैं यह बडी भारी मोहदशा है.

(६) बेइन्द्रिय संयम—काया और मुख वाले जीवों जैसे कि शंख, छीप, कौडी इत्यादिक को पीडा नहीं करना

(७) तेंद्रिय संयम—काया, मुख और नाक वाले जीवों जैसे कि जूं, कीडी, खटमल इत्यादिक को पीडा नहीं करना.

(८) चौरेन्द्रिय संयमः—काया मुख नाक और आंखवाले जीवों, जैसे कि माक्षिका, मच्छर, भ्रमर, विंछू,

तीड इत्यादिक की दया पालना.

(९) पंचेन्द्रिय संयमः—काया, मुख, नाक आंख, कानवाले जीवों जैसे की नारकी देवता मनुष्य और तिर्यंच पशु-पक्षि आदिक को कोइ तरहसे दुःख नहीं देवे उन से द्वेषभाव नहीं रखना, कटू बचन नहीं कहना इत्यादिक प्रकार से संयम पालना.

(१०) अजीव काया संयमः—जिस वसतु में जीव नहीं ऐसी निर्जीव वस्तु वस्त्र पात्रादि को भी अयत्ना से नहीं वापरना चाहिये; क्युं कि कोइ चीज की मुदत खलास होने के सिवाय उस का विनाश करना वह भी दोष है, साधु की पास वस्त्र—पात्रादि होवे और कोइ गृहस्थ उन को दुसरा वस्त्र—पात्रदेवे तो जूना वस्त्र पात्रादि को तोड-फोड नया वस्त्रादि लेना असंयमी का काम है, क्युं कि कोइ भी वस्तु संसार में विना आरंभ और विना परिश्रम नहीं नीपजती है और गृहस्थ को मुफ्त में नहीं मिलती है. गृहस्थ एक चीज को बहुत उद्यम से पैदा करे और

उस को प्राण से प्यार करके रखे. साधुजी को देखकर महा लाभ का कारन जानकर दे देवे फिर वह साधु नयी चीज के लोभ से जूनी चीज का नाश करे तो संयम की रक्षा नहीं होती है.

(११) पेहा संयमः—कोइ भी चीज बीना देखे किंवा बीना तपास करे वापरनी नहीं चाहीये और रात्री भोजन नहीं करना चाहिये.

(१२) उपेहा संयमः—मिथ्यात्वी को उपदेश करके समकिती बनावे और मार्गानुसारी को साधू बनाने का उपदेश करे ओर जो कोइ मार्गानुसारीपणा से किंवा साधुपणा से ढीला पड जावे तो उस को भली भांती समजुती देकर दृढ बनावे.

(१३) पूंयणा संयमः—रजोहरण आदिक से जमीन पुंज [झाड] कर चले; इस से जीवों की रक्षा होती है और चलने वाले की भी पत्थर, काच, वींछू दि से रक्षा होती है.

(१४) परिठावणीया सयमः—पीशाब, थूंक आदि को फटी हुइ जमीनपे, लीलोत्री पर और कीडीयादिक के नगरेपे, भींजी हुइ जगा में नहीं डालना और खुल्ला नहीं रखना.

(१५) मनः संयमः—मन को अपनी काबु में रखे; कीसी का भी बुरा न इच्छे, सर्व जीव से मैत्री भाव रखे, इच्छित वस्तु मीलने से दर्प और दुःख से दीलगीरी न करे; क्यों कि सब परमाणु के खेल हैं.

(१६) वचम संयमः—वचन को अपने काबू में रखे; कठोर, छेदन भेदन कारी, अन्य जीवों को पीडा कारी, हिंसाकारी, मिश्र, क्रोध उपजे ऐसी, मान उपजे ऐसी, लोभ उपजे ऐसी, राग (प्रेम) का बधन होवे ऐसी. द्वेष उपजे ऐसी; अप्रतीतकारी, सुनी सुनाइ, निरर्थक, ऐसी बात कभी न करे और तथ्य, पथ्य और प्रिय वचन ही बोले.

(१७) काया संयमः—शरीर को अपने काबू में रखे; आहार-विहारादि में अयत्नासे नहीं वर्ते; जो जो सयम

की क्रिया है उन सब को यत्ना पूर्वक आचरे प्रमादी बने नहीं

इसी तरह १७ प्रकार का संयम धारण करके बराबर पालने से आश्रवद्वार बंध होता है, और तप आदि से पहिले के किये हुए कर्मों का नाश होता है. ऐसा करने से मनुष्य मोक्ष में जाता है. परन्तु यह मार्ग दुष्कर है. श्री उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि:—

चिराजीणं नगिणीणं जडी संगाडी मुंडीणं ।
एयाणि वि न तायंती, दुसीलं परियागमं ॥

भगवां वस्त्र धारण करने वाले, नग्न रहने वाले, जटा रखनेवाले, मस्तक मुंडानेवाले इत्यादि अनेक रूप धारण किये; परन्तु जहांतक अनाचार का त्याग न किया जावे तहां तक वे तरण तारण नहीं होते हैं.

इस लिये आत्मार्थी जीवों को संयम ही बडा भारी उपकारी है. वो तो सब ढोंग छोड देते हैं तैसे ही सब आशाओं और निराशा को भी छोड देते हैं.

गाथा-अगारिसामाइअंगाणि, सड्ढीकाएण फासए।
पोसहं दुहओ पक्खं, एगं रायं न हावए ॥२३॥उत्त.अ.५

अर्थ—गृहस्थाश्रम में रहकर भी जो गृहस्थ श्री जिनेन्द्र के वचनों को शुद्ध श्रद्धा से श्रद्धान करता हुआ और सामायिकादि अंग अर्थात् त्रिकाल सामायिक दोनों काल प्रतिक्रमण में एक रात्रि की भी हानी नहीं करता है, षटपर्वी आदि उत्तम तिथीयों को पोषधोपवास ब्रह्मचर्य सचित त्यागादि व्रत का पालन कर धर्म पक्ष को पोषते हैं और प्रमाणिक पने से न्यायनीति युक्त द्रव्योपार्जन कर जलकमलवत् रूक्ष वृति से संसार का पोषन करते हैं. यों दोनों पक्ष को पोषन करते हैं. ये गृहस्थ भी देवलोक में महाऋद्धिक देव होते हैं.

गाथा-अह जे संवुडे भिक्खू, दोन्हं अन्नयरे सिया ॥
सव्व दुक्खपहीणे वा, देवे वावि महिड्ढीए ॥२५॥उत्त० अ० ५

अर्थ—और जो साधु हो कर मिथ्यात्व अव्रत प्रमाद

कषाय व योग इन पांचों आश्रव का सर्वथा निरुंधन कर संवृतात्मा होते हैं वे सर्व दुःखो का क्षय कर मोक्ष जाते हैं, और जिनके सर्व कर्मों क्षय न होवे तथा जो सरागी संयमी होवे तो वे अहमेन्द्र इन्द्र सामानिकादि महाऋद्धिक देव हो भवान्तर में मोक्ष जाते हैं ॥

जिस साधुपने के लिये देवों भी झूरते हैं, जिस साधूपने की पास मोक्ष नगरी का इजारा है, जिस साधुपन ने भिक्षुकों को महाराजा के भी राजा बनादिये हैं, जो साधूपना इस जन्म में आधि-व्याधि-उपाधि का टालनहार और अन्य जन्म में देवलोक और मोक्ष तक भी देनेवाला है, उस साधूपन को कोटी नमस्कार हो !

परमपूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदायके
बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋषिजी कृत धर्मतत्त्वसंग्रह
का 'संयम' नामक सातवा प्रकरण समाप्तम्

प्रकरण आठवा-तव-तप.

तवेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ? ।
तवेणं वोदाणं जणयइ ॥ उत्तरा० अ० २९.

शिष्य पुछता है कि-अहो भगवान! तप करने से क्या फल होता है ? गुरुजीने जवाब दिया कि-तप के प्रभाव से मनुष्य बांधे हुए कर्मों को खपाता है.

सुवर्ण प्रकाशित पीली धातु है परन्तु अनादि काल से मिट्टी की साथ मिला हुआ ही जमीन में से मिलता है. सुवर्ण मिश्रित मिट्टी को अग्नि के प्रयोग से निर्मल बनाते हैं. ऐसे ही अपनी आत्मा भी प्रकाशित और शुद्ध है, परन्तु अनादि कर्मों से संयुक्त होने से उस का प्रकाश छूपा रहा है. जब उस को ज्ञान रूपी सुवर्णकार द्वारा सम्यक्त्व रूप मूश में रख संयमरूप सोहागी

क्षार दे तप रूपी अग्नि का प्रयोग किया जायगा तब कर्म रूपी मिट्टी का क्षय होगा और आत्मा रूपी शुद्ध सुवर्ण प्रकाशमान होगा. *

कोई कहते हैं कि तप करनेवाले लोग मूर्ख हैं, क्यों कि पाप तो जीवने किया और वे लोग इस शरीर को दगा देते हैं. शरीर को भूख प्यास से दुःख देने से आत्मा को क्या फायदा होता है ? ऐसा कहनेवाले लोगों को पुछना चाहिये कि—आप कभी घृत खरीदते हो ? घृत में छाछ होने से आप क्या करते हो ? बरतन में घृत को डाल कर अग्नि पे रखते हो, इस से घृत शुद्ध हो जाता है; परन्तु घृत को शुद्ध करने के लिये बरतन

---

* दोहा-मूसी पावक सोहगी, फूंक्यातणा उपाय॥
रामचरण चारों गिले, मैल कनकका जाय ॥१॥
कर्म जीवसे भिन्नकरे, ज्ञान रूप सोनार ॥
सम्यक्त्वमूस तपपिदे, शुद्ध करे संयम खार ॥ २ ॥

को क्यों तपाते हो ? बस ! जैसे घृत को शुद्ध करने के लिये घृत को धारन करनेवाला बरतन को अग्नि पे रखना होता है, ऐसे ही आत्मा को शुद्ध करने के लिये आत्मा जिस देह में स्थित हुआ है उस देह को तपश्चर्या की अग्नि देनी पडती है.

तप कुछ शारीरिक ही होता है ऐसा नहीं है. तपके दो प्रकार है. १ बाह्य तप और २ आभ्यंतर तप.

१ बाह्य तप

बाह्य तप के ६ भेद हैं—(१) अनसण, (२) उणोदरी. (३) भिक्षाचारी, (४) रस परित्याग, (५) कायाक्लेश, और (६) प्रतिसंलीनता.

(१) अनशन तपः—अन्न—जल—खान—मुखवास—यह चारों आहार का त्याग करना उस को अनशन तप कहते हैं. इस के भी २ प्रकार हैं—(१) मर्यादा युक्त

तप को 'इतरिया' और (२) जावजीव के तप को 'अवकाहीया' तप कहते हैं.

'इतरिया' तप के भी ६ भेद हैं—(१) श्रेणी तप, (२) परतर तप, (३) घन तप, (४) वर्ग तप, (५) वर्गावर्ग तप, और (६) प्रकीर्ण तप, इस में श्रेणी तप के भी अनेक भेद हैं,—जैसे कि चोथ भक्त (उपवास), छठ भक्त (बेला) अठम भक्त (तेला). इत्यादि ६ मास तक की तपस्या. 'परतर तप' इन १६ कोष्टक मुजब उपवास करे, उसी मुजब ८×८=६४ कोष्टकके तप का नाम घन तप; और ६४×६४=४०९६ कोष्ट केतपको 'वर्ग तप'; और ४०९६×४०९६=१६७७७२१६ कोष्टक के तप को 'वर्गावर्ग' तप कहते हैं 'प्रकीर्ण' तप के अनेक भेद हैं जैसे कि, एकावली, मुक्तावली, रत्नावली, लघुसिंहक्रिडा, वृद्धसिंहक्रिडा, इत्यादि.

१	२	३	४
२	१	४	१
३	४	१	२
४	१	२	३

२. अवकाही (जावजीव के) तप के दो भेद हैं:— (१) भत्त पच्चखाण; (२) पादोपगमन.भत्त पच्चखाण में आहार का त्याग किया जाता है और पादोपगमन में आहार और शरीर दोनों का त्याग किया जाता है अर्थात् हलिने चलने का भी त्याग किया जाता है.

(२] उणोदरी तपः—उपगरण और आहार कमती करना सोद्रव्य ऊणोदरी और क्रोधादि कषाय कम करना सो भाव ऊणोदरी तप कहते हैं.

(३) भिक्षाचारी तपः—बहुत घर की भिक्षा से अपना निर्वाह करे उस को भिक्षाचारी तप अथवा गोचरी भी कहते है; क्यूं कि गाय भी इसी तरह बहुत जगाहसे थोडा २ घास खा के पेट भरती है. भिक्षाचारी तप के चार भेद हैं. (१) द्रव्य से (२) क्षेत्र से (३) काल से (४) भाव से. अमुक जगा से, अमुक मनुष्य का हाथ से. अमुक चीज का आहार अमुक

वक्तपर मिलेगा तब मैं ग्रहण करुंगा ऐसा आभिग्रह को भिक्षाचारी तप कहते हैं.

(४) रस परित्याग तप—दुग्ध, दही, घृत, तेल, मिष्टान्नादि रस का त्याग करना उस को रसपरित्याग तप कहते हैं. ऐसा तप करनेवाले महात्मा बेस्वाद, लूखा सूका जैसा निर्दोष मिले वैसा सब प्रकार का आहार खा लेता हैं, उस से उन को सहनशीलता सम भाव की प्राप्ति होती है और इन्द्रिय निग्रह की शक्ति भी मिलती है.

(५) कायाक्लेश तप—काया को धर्मार्थ तकलीफ देकर इंद्रियों को अपनी ताबेदार बनावे उस को काया क्लेश तप कहते हैं. विना तकलीफ कोई काम नहीं होता है. ऐश आराम के शोखीन लोग और शरीर की रक्षा करने में ही धर्म माननेवाले लोग धर्म-अर्थ—काम किंवा मोक्ष कुछ नहीं साध सकते हैं.

कायक्लेश तप के भी अनेक भेद हैं. जैसे-'ठाणठितीय'

काउसग्ग करके खडा रहे; 'ठाणाइ तप' बिना काउ-सग्ग ही खडा रहे. 'उकुडासणीय' दोनों गोडे के बीच में मस्तक रखकर काउसग्ग करे. 'पडीमाठाइ' १२ प्रकार की पडिमा धारण करे. यथा-पहिली पडिमा एक महिने तक एक दात आहार की और एक दात पानीकी. दुसरी पडिमा २ महिने तक दो दात आहार और दो दात पानी की. तीसरी पडिमा तीन महिने तक तीन दात आहार और तीन दात पानी की. चौथी पडिमा चार महिने तक चार दात आहार और चार दात पानी की. पांचवी पडिमा पांच महिने तक पांच दात आहार और पांच दात पानी की. छठी पडिमा छेमहिनेतक छ दात आहार और छ दात पानी की. सातमी पडिमा सात महिने तक सात दात आहार और सात दात पानी की. ८ मी पडिमा सात दिन तक चौवि-हार एकांतर उपवास करे, दिन को गांव की बाहीर सूर्य की आतापना लेवे, रात को वस्त्र रखे नहीं. तीन

प्रकार के आसन करे, और देव—दानव मानव का परिषह सहन करे. ९ मी पडिमा सात दिन चौविहार एकांतर उपवास करे, दिन को सूर्य की आतापना लेवे, रात को वस्त्र रहित रहे, २ प्रकार के आसन करे, १० मी पडिमा सात दिन चौविहार एकांतर उपवास करे, दिन को सूर्य की आतापना लेवे, रात को तीन प्रकार के आसन करे. ११ मी पाडिमा वेला करे, दुसरे उपवास के रोज गांव की बाहार जा के ८ प्रहर का कायोत्सर्ग करे, देव तिर्यंच मनुष्य के उपसर्ग सहे. १२ मी पडिमा तेला (अठम) करे, तीसरे दिन स्मशान भूमि में कायोत्सर्ग करे, एक पुद्गल रे दृष्टि रखे-आंख टमकावे नहीं. उस वख्त देव, मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी उपसर्ग होवे. यदि तपस्वी चलायमान होवे तो उन्माद, धर्मभ्रष्टता और दीर्घ काल रहे ऐसी बीमारी होती है और जो दृढ रहनेसे अवधि—मनःपर्यव—केवल इन तीन ज्ञान में से एक ज्ञान अवश्य ही प्राप्त होता है.

(६) प्रतिसंलीनता तप के ४ भेद हैं:— [१] इन्द्रिय प्रतिसंलीनता; (२) कषाय प्रतिसंलीनता; (३) योग प्रतिसंलीनता; (४) विविक्त सयणासण सेवयमाणे.

इन्द्रिय प्रतिसंलीनता:—१ श्रोत्रेन्द्रिय [कान] २ चक्षु इन्द्रिय [आंख], ३ घ्राणेन्द्रिय [नासिका], ४ रसेन्द्रि [जीह्वा] और ५ स्पर्शेन्द्रिय [काया]: इन पांच इन्द्रियों को* जीतना, उसे "इन्द्रिय प्रतिसंलीनता" तप कहते हैं.

श्रोत्रेन्द्रिय का धर्म सजीव निर्जीव व मिश्र के शब्द सुनने का है, इस के फंदे में मृग फस कर आप ही मारा जाता है. चक्षु इन्द्रिय का धर्म काला, नीला [हरा], लाल

* आंख, कान, नाक, आदि बाह्य शरीर को इन्द्रियों नहीं समजना, इन को तो अवयवों कहते हैं परन्तु इन अवयवों का जो धर्म (देखने का-सुनने का इत्यादि) उन को 'इन्द्रिय समजना. केवलज्ञानी को इन्द्रियके आकार रूप होती है परन्तु उन का विकार नहीं होता है.

पीला, श्वेत और मिश्र रंगो के पदार्थों को देखने का है इस से फंदे में फसकर पतंग दीपक में पडकर शरीर को जलाते हैं. घ्राणेन्द्रिय (नासिका) का धर्म अच्छी और बुरी गंध जानने का है. इस इन्द्रिय के मोह से भमरा कमल में मरजाता है. रसेन्द्रि (जीह्वा) का धर्म खारा; मीठा, तीखा, कडूवा और खाटा रस को जानने का है. इस इन्द्रिय के वश में मच्छी प्राण त्याग करती है. (जीह्वा वश रखने से और सब इन्द्रियाँ भी वश में रहती हैं) स्पर्शेन्द्रि का धर्म हलका, भारी, ठंडा, गरम, लूखा, चिकना, कोमल और कठिन स्पर्श जानने का है. स्पर्श-इन्द्रि के वश हो कर हाथी खड्डे में पड कर मर जाता है.

एक २ इन्द्रिय के वश पडे प्राणी मृत्यु पाते हैं तो जो सब इन्द्रियों के वश में हो जाने से भव भ्रमण करे इ में क्या आश्चर्य है ? ऐसा विचार करके अपनी इन्द्रि को अपने काबु में रखना चाहिये.

[२] कषायप्रतिसंलीनता—१क्रोध, २ मान, ३माया और ४ लोभ. इन चारों को कषाय कहते हैं, क्यों कि इन से संसार का कस आकर कर्मों का रस जमता है. क्रोध छोड के क्षमा, मान छोड के नम्रता, माया छोड के सरलता और लोभ छोड के संतोष स्विकारना उस को "कषाय प्रतिसंलीनता" तप कहते हैं.

(३) योग प्रतिसंलीनता—मन, बचन और काया के योग को अशुद्ध मार्ग से निवृताकरशुद्ध मार्ग में प्रवर्त्तांना उस को "योग प्रतिसंलीनता" कहते हैं.

(४) विविक्त सयणासण सेवणया—'विवित' अर्थात् मनुष्य—तिर्यच—देवताकी स्त्री रहीत तथा पंढग (नपुंसक) रहीत १ वेलादिक की वाडी में. २ कोट-युक्त वगीचे में. ३ उद्यान में; ४ यक्षादिक के देवस्थान में, ५ पाणी की पोहोकी जगाह, ६ सराय (धर्मशाला) में, ७ लोहार प्रमुख की शाला में, ८ बनीये की दुकान

में, ९ साहुकारों की हवेली में, १० उपाश्रय (ध
स्थानक) में, ११ श्रावक की पोषधशाला में, १२
नादिक के कोठार में, १३ मनुष्यों की सभा में,
पर्वतादिक की गुफा में; १५ राजसभा में, १६ स्मश
नादिक की छत्री में, १७ स्मशान; १८ वृक्षादिक
नीचे 'इन १८ प्रकार के स्थानक में आसण' अर्था
पाट—बाजोठ इत्यादि भोगवे सयण—शैय्या अर्थात् ऐसे
स्थान में रहे सो 'विवित सयणासण सेवणया'

आभ्यंतर तप,

"आभ्यंतर तप" अर्थात् गुप्त तप के ६ भेद
१ प्रायश्चित, २ विनय: ३ वेयावच्च; ४ सज्झाय;
ध्यान; ६ विउसग्ग.

(१) प्रायश्चित तपः—१० प्रकार के दोषों
क्षय करने के लिये "प्रायश्चित्त तप" किया जाता
(१) कंदर्प=काम देव के वश में होके दोष लग

(२) प्रमाद के वश में दोष लगावे. (३) अजाणपने में दोष लगावे. (४) क्षुधा के वश में दोष लगावे. (५) आपदा (विपत्ति) के सबब से दोष लगावे. (६) किसी तरह की शंका के सबब से दोष लगावे. (७) उन्मत्तपना से दोष लगावे. (८) किसी तरह के डरके लिये दोष लगावे. (९) किसी की परीक्षा करने के लिये दोष लगावे. (१०) किसीपे द्वेषभाव करके दोष लगावे.

दशगुन के धारक प्रायश्चित से शुद्ध होते हैं—१ जो शुद्धात्मा है, २ जातवंत है, ३ कुलवंत है, ४ विनयवंत है, ५ ज्ञानवंत है, ६ दर्शनवंत है, ७ चारित्रवंत है, ८ क्षमा वैराग्यवंत है, ९ जितेन्द्रिय है, और १० जो पापका पश्चाताप करता है ऐसा प्राणी तो कोई प्रकारका दोष लग जाने से प्रायश्चित अवश्य लेता है.

अब जानना चाहिये कि प्रायश्चित देने का अधिकारी कौन है ? तो कि—१ जिस का आचार

इत्यादिक को सुश्रुषा कहते हैं. और (२) देव, गुरु, धर्म, और चतुर्विध संघ का अविनय असातना नहीं करना सो अनाशातना विनय कहते है.

चारित्र विनय के ५ भेदः—१ सामायिक चारित्र २ छेदोपस्थापनीय चारित्र; ३ पडिहार विशुद्ध चारित्र; ४ सूक्ष्म संपराय चारित्र; ५ और यथाख्यात चारित्र. इन पांच ही चारित्र के धरणहारों का विनय करे.

मनविनय के २ भेदः—अप्रशस्त और प्रशस्त. हिंसाकारक, परितापकारक, खोटे विचारो में प्रवर्त्ते उस को अप्रस्त कहते हैं. उस को रोकना. और प्रशस्त अर्थात् जिन विचारों से किसी को भी हित पहुंचे ऐसे विचार करना. वचन विनय के और काया विनय के भी उक्त प्रकार दो दो भेद हैं.

लोकव्यवहार विनय के ७ भेद—१ गुरु समीप सविनय वर्त्ते. २ बडे पुरुषों के इच्छानुसार वर्त्ते. ३ ज्ञा

नादिक कार्य अर्थ के विनय कर. ४ ज्ञान देनेवाले का विनय करे. ५ अरितवंत को समाधि उपजावे. ६ देश–काल देख के प्रवर्ते. और ७ सर्व काम शुद्ध सरल भाव से अप्रमाऽपन करे, किसी के छल में नहीं आवे यह. लोक व्यवहार विनय.

(३) वैयावच्च तप–अर्थात् सेवा भक्ति करके साता उपजावे. इस के १० प्रकार १ ज्ञानादिक पांच आचारके धरण. हार आचार्यजी की, २ बहु सूत्र के जाननेवालेउपाध्यायजी की, दुक्कर तपस्या करनेवाले तपस्वीजी की, ४ नव दीक्षित मुनि की ५ रोग युक्त मुनि की, ६ पंचमहाव्रतादि गुण युक्त साधुजी की, ७ तीन प्रकार के * स्थविर की, ८ चतुर्विध संघ की, ९ एक गुरु के बहुत शिष्य होवे ऐसे कुल की और १० समुदाय के साधुओं की सेवा

* २० वर्ष उपरान्त की दीक्षावाले, स्थानांग समवायांग सूत्र के ज्ञाता, और ६० वर्ष उपरांत की वयवाले. इन ३ को स्थविर कहते हैं.

करके ह्र तरह से शाता उपजावे,

(४) सज्झाय तप—सज्झाय अर्थात् ज्ञानाभ्यास=शास्त्र का अभ्यास करना. इस के ५ भेद हैं—१ 'वायणा' अर्थात् गुरु आदिक गीतार्थ बहुसूत्री की पास विनय युक्त सूत्रादिक की वांचणी लेनी. २ 'पूछणा' जो वांचणी ली होवे उस को स्थिर चित्त से विचारनी २ कुछ संदेह पडे तो गुरु को हाथ जोडकर भावे पूछना. ३ 'परियट्टणा' पहिले जो विधियुक्त वांचणी ले कर और पूछणा [पृच्छना] से ज्ञान संपादन किया है उस को पुनः २ विचारना. ४ 'अणुप्पेहा' अर्थात् उपयोग सहित परियट्टणा करना-फरते रहना और ५ 'धम्मकहा' पूर्वोक्त विधि से जो शुद्ध ज्ञान संपादन किया है उस को बहुत लोगों की समक्ष प्रगट करना अर्थात् प्रकाशना, धर्मो देश करना.

(५) ध्यान तप—ध्यान शब्द का मूल धातु 'ध्येय' है, जिस का अर्थ अंतःकरण में विचार करने का है. अंतः

करण का विचार कभी शुभ होता है. और कभी अशुभ भी होता है.

ध्यान
- अशुभ
  - आर्तध्यान
  - रौद्रध्यान
- शुभ
  - धर्मध्यान
  - शुक्लध्यान
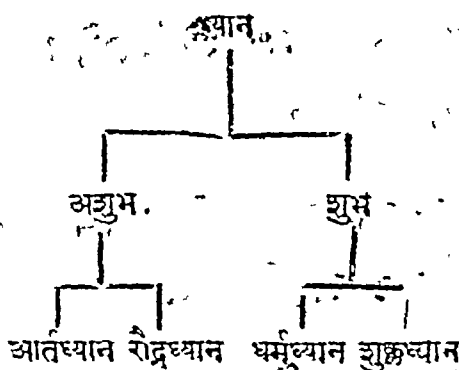
आर्तध्यान ४ प्रकार से ध्याते हैं—१ अमनोज्ञ [खोटे] शब्द-रूप-गंध-रस-स्पर्श का वियोग चिंतवना सो. २ मनोज्ञ [अच्छे] शब्द-रूप-गंध-रस-स्पर्श का संयोग चिंतवना सो. ३ ज्वरादिक रोगों का वियोग चिंतवना सो. ४ सुखदायी कामभोग का संयोग चिंतवना सो.*

* आर्तध्यानवाले मनुष्य के ४ लक्षण है—(१) कंदणया-आक्रंद करे. (२) सोयणया-शोक [चिंता] करे; (३) तिप्पणया-अश्रुपात करे; (४) विलवणया-हाय त्रास और त्राहि २ शब्द का उच्चार करे.

रौद्रध्यान ४ प्रकार से ध्याते हैं—१ हिंसा करनेका विचार करे. २ झूठ बोलने का विचार करे. ३ चोरी करने का विचार करे. ४ भोगोपभोग के पदार्थों के संरक्षण का विचारकरे. *

धर्म ध्यान—धर्म ध्यान की ४ चितवणा, ४ लक्षण, ४ आलंबन और ४ अनुप्रेक्षा हैं.

धर्म ध्यान की ४ चितवणा—१ आणाविजय=वीतराग देव की आज्ञा चितवे कि 'परमेश्वरने तो आरंभ परिग्रह खोटा कहा है, और रे जीव! तूं तो इस में लुब्ध हो रहा है तो तेरी गति कैसी होगी ? अब तो उस का त्याग कर.' २ अवाय विजय=ऐसा चितवे कि 'मैं इस

* रौद्रध्यानवाले मनुष्य के ४ लक्षण हैं-(१) उपणादोष-हिंसादिक का चितवन करे, (२) बहुल दोष-हिंसादि चारों का वारंवार विचार करे, (३) अणाण दोषं-कोक शास्त्रादि अज्ञानीओं के शास्त्रों का अभ्यास करे, और (४) अमरणांत दोष-मृत्यु तक भी पाप का पश्चाताप करे नहीं.

जगत् में राग द्वेष के बंधन से बंधा हुवा हूं इस लिये चतुर्गति में नाना प्रकार की विटंबना होती है. अब रे जीव ! इन बंधन को तोड के सुखी हो.' ३ विवाग विजय—ऐसा चिंतवे कि, 'चेतन को शुभ और अशुभ दो प्रकार के कर्मों और उन के शुभ और अशुभ विपाक [फल] रूपी सोना और लोहा की बेडी लगी हुइ है. जब दोनों टुटेगी तब मोक्ष मीलेगी.' ४ संठाण विजय—लोक का संठाण का चिंतवन करे कि—'वीतराग देवने कहा है कि-दो पांव चोडे कर कमर को हाथ लगा कर खडा होवे, इस आकार लोक का संठाण है. दोनों पांव के बीच में नर्क का स्थान; कमरके स्थान मध्य लोग असंख्यात द्वीप समुद्र; पेटके स्थान ज्योतिषी; छाती के स्थान बार देवलोक; गलेके स्थान नव ग्रीवेग; मुख के स्थान अनुत्तरविमान; लिलाट के स्थान सिद्धशिला उपर सिद्ध भगवंत, इत्यादिक का चिंतवनकरे.

धर्मध्यान के ४ लक्षणः—(१) आणारुइ=परमेश्वरने जो शास्त्र में क्रिया फरमाइ है वो अंगिकार करने की रुचि जगे (२) निसर्गरुइ=जीव–अजीव–पुण्य–पाप–आश्रव–संवर–निर्जरा–बंध-मोक्ष इन नव तत्त्व को जाणने की रुचिजगे [३] उपदेश रुइ=गुरु आदिकका सदुपदेश सुणने की रुचि जगे. और (४) सूत्ररुइ=द्वादशांगी वाणी बांचने की—सुणने की रुचि जगे.

धर्म ध्यान के ४ अवलंबन (आधार):—वायणा, पूछणा, परियट्टणा, धम्मकहा. (इनका अर्थ पहीले लिखा गया है.)

धर्म ध्यान की ४ अनुप्रेक्षाः—(१) आणिच्चाणुपेहा=ऐसा विचारे कि "इस जगत में जो पुद्गलीक पदार्थ हैं वे सब अनित्य हैं. रे जीव ! तूं तेरे मन में शाश्वता मान के बैठा है परंतु अब तूं उनपेसे प्रीति

उतार और ज्ञानादि त्रीरत्न की साथ प्रीति जोड तो सुखी होगा. " (२) असरणाणुपेहा=ऐसा विचारे कि ", रे आत्मन् तेरे को इस जगत में कोइ शरण (आधार) भूत नहीं है. तेरे स्वजन मित्रादि हैं, सो तो जब लग तेरे पुण्य प्रबल हैं तब तक मेरी खबर पूछते हैं. परन्तु जब तूं निर्धन बनेगा-दुःखी बनेगा तब कोइ तेरा नहीं बनेगा. एक वीतराग देवका शरण ही सच्चा है." (३) एगताणुपेहा=ऐसा बिचारे कि, " रे जीव ! तूं अकीला आया, अकीला है और अकीला ही जानेवाला है. यह शरीर ओर लक्ष्मी आदिक जड है, अनित्य है; और तू तो चैतन्यरुप नित्य है. तेरा तो आत्मीक गुण ज्ञानादि त्रीरत्न ही है. उन को तुं भूल गया है तो अब उन की साथ मित्राचारी कर." (४) संसाराणुपेहा=ऐसो विचार करे कि,-" चतुर्गति रूप संसार में रे जीव ! तेने महा दुःख सहन कीये हैं. अब कुछ पुण्य योग से

सद्धर्म की प्राप्ति हुइ है. अब तो जरा चेत और बाह्य आत्माका दमन कर अंतर प्रकृतियों को मार. जिनेश्वर भगवान की आज्ञा मुजब क्रिया कर. ”

शुक्ल ध्यानः—शुक्ल ध्यान की ४ रीत, ४ लक्षण, ४ अवलंबन और ४ अनुप्रेक्षा हैं.

शुक्ल ध्यान की ४ रीतः—पुहत्तवियकेसवीयारी अर्थात अनंत द्रव्यरूप यह जगत है इस में एक ही द्रव्य का स्वरुप ग्रहण कर उस की उत्पत्ति, क्षय और जूदे जूदे पर्याय उन को शब्द से अर्थ में और अर्थ से शब्द में चिंतवन करे. (२) एगंतवियत्त अविचारी=उत्पत्ति आदि पर्याय के जितने द्रव्य हैं उन का एकवचना—अभेदपण तथा आकाशादि प्रदेश का अवलंबनपणा का विचार करे (३) सुमुच्छिन्न क्रिया अपडवाइ—सर्व क्रिया में अति सूक्ष्म क्रिया समय मात्र रहणहार एक इर्यावही है वो जिन के रही है और अप्रतीपाती ज्ञान का अवलंबन किया ऐसे

तेरे में गुणस्थान के धणी वृति प्रणामी समय समय जिन के विशुद्ध प्रणाम की वृद्धि होती है ऐसे विचारवंत केवली भगवान है. (४) समुछिन्न क्रिया अनियट्टी—सर्व था प्रकारे क्रिया का क्षय करे. अयोगी सेलेसी पर्वत की तरह स्थिरबने. इस ध्यानयुक्त पांच लघु अक्षर का उच्चार प्रमाणे रह कालान्तर निराबाधपणे अचल अक्षय ऐसे मोक्ष स्थान को प्राप्त होवे सो चौदहवें गुणस्थानक के धणी अजोगी केवली भगवंत.

शुक्ल ध्यानी के ४ लक्षण:—(१) विवेगा—जीव से शरीर भिन्न है, जैसे कि तिल से तेल भिन्न, दूध से घी भिन्न है. ऐसा समझ कर शरीर पे ममता न करे (२) विउसग—बाह्य और आभ्यंतर सर्व संग से निवर्ते. (३) अवठे—नाना प्रकार के उपसर्ग सहन करेपरंतु चलायमान न होवे. (४) असमोह—अच्छी या बुरी चीज को देखकर रागद्वेष नहीं करे.

शुक्ल ध्यानी के ४ आलंबनः—क्षमा, निर्लोभता, ऋजुता, मृदुता. (इन का स्वरूप प्रथम के चार प्रकरण में कहा है)

शुक्ल ध्यानी की ४ अनुप्रेक्षाः—(१) अवायाणुपेहा ऐसा विचारे कि-"प्राणातिपात—मृषावाद-अदत्तादान—मैथुन परिग्रहः यह पांच आश्रवों जीव को दुःख देने वाले हैं इस को छोंडेगा तब सुखी होगा," (२] अशुभाणुपेहा—ऐसा विचारे कि, "इस जगत में जितने पुद्गलीक पदार्थ और सुख हैं वे सब अशुभ हैं"(३) अनंत वतीयाणुपेहा-इस जीवने अनंत पुद्गल परावर्त्तन में अनंत भवों की श्रेणि करके अनं परिताप सहन किये हैं." (४) विपरिणामाणुपेहा—ऐसा चितवे कि, "वस्तुका स्वभाव क्षणभंगुर है. जो वस्तु अबी सुंदर दिखती है वो क्षिण मात्र में विगड जाती है. वस्तु मात्र मेघ धनुष्य और औस [झाकल] का बिंदु समान है."

(६) "विउसग्ग" (काउसग)—विउसग्ग अर्थात् खोटी वस्तु को वोसरानी-छोडना. उस के २ भेद हैं. (१) द्रव्य विउसग्ग और (२) भाव विउसग्ग. द्रव्य विउसग्ग के ४ भेद—१ शरीर विउसग्ग—शरीर की विभूषा नहीं करनी—केसादिक नहीं समारना इत्यादिक. २ गण विउसग्ग—समुदाय का त्याग कर अर्थात् जो साधु ज्ञानवंत, क्षमावंत, जीतेन्द्रिय, अवसर का जाण. धीर वीर, पूर्ण श्रद्धावंत होवे ऐसा साधु गुरु की आज्ञा लेकर अकीला विचरे. ३ उवही विउसग्ग—वस्त्र-पात्रादि कमी करे. ४ भत्तपाण विउसग्ग—यथाशक्ति नौकारसी प्रमुख तप आचरके आहार पानी का त्याग करे, अवसर आये संलेषणा करे.

भाव विउसग्ग के ३ भेद—१ 'कषाय विउसग्ग'—क्रोधादिक चार कषाय का त्याग करे; २ 'संसारविउसग्ग'—

जिन कर्मों से चारेगति में * भ्रमण होता है उन कर्मों को त्यागे. ३ 'कम्मविउसग्ग' जिस करके जी संसार में रुले उसे कर्म कहना. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय, इन ८ कर्म बन्ध के कारणों का त्याग करे.

इसी मुजब तप के विविध शास्त्रमें भेद हैं. तप है सो कर्म रूप पहाडको विदारने के लिये वज्र समान है. पाप

* नर्कगति में जाने के ४ कारण–(१) महा आरंभी काम, (२) महा परिग्रही काम, (३) मदिरा पान और मास भक्षण, (४) पंचेन्द्रिय जीवों का सहार ॥ तिर्यंच गति में जाने के ४ कारण=(१) दगा, (२) विश्वास घात, (३) झुट वचन, (४) खोटे तोल=माप ॥ मनुष्य गति में जाने के ४ कारण=(१) भद्रिक स्वभाव, (२) विनय गुण, (३) दयालुता, (४) गुणवंतपे प्रेम ॥ देव लोक में जाने के ४ कारण [१] संयम पाले परंतु शिष्य व शरीरपे ममता रखे, [२] श्रावकपणा पाले, [३] बालतपस्वी होवे [४] अकाम निर्जरा करे.

रूप अंधकारका नाश करने में सूर्य समान है. कामरूपमृग को मारने के लिये सिंह समान है. तृष्णा को काटने का समर्थ हथीयार है. धर्म वृक्ष को पानी पानेवाले मेघ है. इस लिये आत्मार्थी जीवों को लाजीम है कि कर्म की निर्जरा के अर्थ तप अवश्यमेव करना.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी रचित धर्म तत्त्व संग्रह का आठवा तप नामक प्रकरण समाप्त.

प्रकरण नववां—वैद्य—चैत्य—ज्ञान.

"पढमं नाणं तओ दया" (प्रथम ज्ञान, पीछे दया.)

दशवैकालिक सूत्र

"णाणस्स सव्वस्स पगासणाय ॥

(ज्ञान सर्व स्थान में प्रकाश करता है)

उत्तराध्ययन.

"विद्या विहीनः पशुः" (विद्या विना नर पशु समान है)-भर्तृहरी

"It is better to be unborn than untaught; for ignorance is the root of all evils."

नहीं पढने से नहीं जन्मना अच्छा है. "—प्लेटो.

अंधारी गुफा में जाने वाले मनुष्य दीपक लेकर जाते हैं. विना दीपक जाने वाले को रस्ता नहीं दिखता

है और भटक भटक के मर जाते हैं. ऐसे ही इस संसार की गुफा में जो प्राणी आये हैं उन को रस्ता दिखाने वाले ज्ञान की अवश्य जरुरत है. विना ज्ञान यों वेचारे आधि व्याधि उपाधि में पडकर मर जाते हैं ज्ञान है सो ही दिव्य तेजोमयी दीपक है.

इस विषय के सम्बन्ध में मैं ५ वातों का विवेचन करूंगा. (१) अज्ञान से क्या हुवा है ? (२) ज्ञान से क्या होता है ? (३) ज्ञान के भेद. (४) ज्ञानी किस को कहना ? और (५) ज्ञान का फैलाव के लिये क्या करना?

इस आर्यावर्त की जाहोजलाली एक वख्त पर ऐसी थी कि उस की वरावरी कोइ देश नहीं कर सकता था. विविध प्रकार के हुन्नर, कला, व्यापार चल रहे थे. क्रोडपतिओं भी वहुत थे. धर्मीष्ट और शुरवीर लोग भी

* चेइय शब्द के ५५ अर्थ और चैत्य शब्द के ५७ अर्थ मीलके ११२ अर्थ होते हैं.

असंख्य थे. वही देश की आज स्थिति कैसी हुई है ? देखिये ! आज बहुत ही आर्य लोगों भूख से मर जाते हैं, बहुत ही लोगों कहते हैं कि बिना नौकरी और कौनसा काम हम करें ? सब हुन्नर तो पश्चिम की प्रजा में चले गये. इधर तो गुलामी, भूख, अज्ञानता, और व्हेमों ही रह गये. उस का सबब एक अज्ञान ही है. कभी अज्ञान नहीं होता तो लोगों कुसंग में पडते नहीं, स्वदेशी माल छोड विदेशीय माल ले कर स्वदेश की लक्ष्मी को परदेश भेजते नहीं. मूर्ख भिक्षुकों के बहेकाये हुए व्हेमों में फस कर अपने देशको डुबाते नहीं, और मिथ्यात्व सेवन में अपनी आत्मा को फसाते नहीं. अज्ञान से क्या अनिष्ट नहीं होता है ? देखीये, अज्ञान से चोरी, अज्ञान से झूठ अज्ञान से व्यभिचार, ज्ञान से आत्मक्लेश और अज्ञानसे ही नरकवास होता है. मोह-माया का जोर भी तब तक चलता है कि जहाँ तक मनुष्य अज्ञान को पकडते हैं.

कितनेक वेचार संसार में दुःख देख कर त्यागी हो जाते हैं परन्तु अज्ञानता का तो त्याग नहीं करते हैं. बाह्य त्याग से क्या होता है? अज्ञानता का त्याग नहीं करने से वो बेचारे आप भी दुःख पाते हैं और विशेष में अन्य हजारों मनुष्यों को दुःखी करते हैं. अज्ञानता के सब से सब वो वेरागी नहीं परंतु बेगारी कहे जाते हैं. ऐसे लोग स्वकल्पित धर्म का धंधा लेकर अपना गुजरान चलाते हैं. परंतु हाय अफसोस! जैसे उपदेश करनेवाले अज्ञानता से हिंसक उपदेश करते हैं ऐसे ही उपदेश सुननेवाले भी अज्ञानता के प्रताप से ही उस को ग्रहण कर लेते हैं. आत्मिक धर्म को छोड के हिंसक धर्म का उपदेश करनेवाले, इधर उधर के दो चार श्लोक कंठाग्र करके शास्त्र पारंगामी कहलाने वाले, लक्ष्मी को रखनेवाले, संसारी जनोंकी साथ खटखट में पडने वाले, क्लेश कराने वाले, आप बडाइ करनेवाले, रेलगाडी में

मुसाफरी करनेवाले, अधम वेषधारीओं को मानने—पूजनेका कारण भी अज्ञानता ही है. चालाक आदम तो अवश्य ही विचार करेगा की बिना आचार-विचा और बिना दया, और बिन मैत्रीभाव हर किसी को सा किस तराह से कहा जावे ? अर्थात् वे साधु नहीं हैं.

ज्ञान से क्या होता है ?

ज्ञान से क्या होता है वो जानने की इच्छा हो तो देखो जापान देश. १०—१५ वर्ष में उस की स्थिति कैसी बदल गइ है ? धन, हुन्नर, विद्या, बल और तेज कितना हो गया है, सो विचारो. इन सबका कारण सीर्फ व्यवहारिक ज्ञान की वृद्धि है. अंग्रेज लोग कि जो नग्न फिरते थे और मुखपर मिट्टी लगाते थे, वो लोग आज सब से वडे हो गये हैं और आर्यावर्तपर राज चलाते हैं उस का सबब भी विद्या ही है.

सांचा, तार, फोनोग्राफ सब विद्या का ही प्रता

है, इग्लंडके लोग चेम्लरलेनके वश में और हिंदके लोग दादाभाइ के नाम से फीदा फीदा हो जाते हैं. उस का सबब भी उन का ज्ञान ही है. तीर्थंकर भगवान को जो जो प्राणी देखते थे वो सब अधीन बन जाते उस का सबब भी उन का आत्म ज्ञान ही था.

आचार-विचार सब का आधार ज्ञानपर ही है. श्री उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि:—

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एयमग्ग मणुपत्ता, जीवा गच्छंती सुग्गइं ॥ अ० २८

अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप इन चारों को अनुक्रम से आराधनेसे जीव मोक्ष रूप सुगतिमें जाता है. इस में स्पष्ट कहा है कि अव्वल में सम्यक् ज्ञान चाहिये; ज्ञान होवे तो जीव-अजीव का जान होगा, दया का रस्ता दिखा जायगा, और दुःख के कारन समझे जायंगे इस से किस को त्यागना और किस को ग्रहण करना

उस का भान होगा, वही सम्यक दर्शन सम्यक् ज्ञान
चारित्र और तप का स्वीकार किया जायगा, कि जो
मोक्षदाता है.

ज्ञान के भेद

ज्ञान के और विद्या के दो प्रकार हैं:—(१)
लौकिक ओर (२) लोकोत्तर. [१] लौकिक ज्ञान में
तरह तरह के हुन्नर, पिंगल, गणीत, व्याकरण, खगोल, भूगोल,
रसायण, वैद्यक, वाद्य आदिकका समावेश होता है और
(२) लोकोत्तर ज्ञान में आत्मा का उद्धार की विद्या
का समावेश किया जाता है. जीव क्या, अजीव क्या,
स्वर्ग-नरक-मोक्ष क्या, मोक्ष का रस्ता क्या, इन सब
बातों का समावेश लोकोत्तर विद्या में होता है.

ज्ञान के पांच भेद शास्त्र में कहे हैं:—(१) मतिज्ञान:
—वस्तु का जैसा स्वरुप है वैसा ही दर्शावे उसे 'मति-
ज्ञान' कहते हैं. उस के १४ भेद हैं श्रोत-चक्षु—घ्राण-

रस और स्पर्श, यह पांच इन्द्रि करके व्यंजनका शब्दका ग्रहण करे सो 'व्यंजनावग्रह' और अर्थ का ग्रहण करे सो' अर्थावग्रह. ऐसे ५×२=१० भेद. और उत्पातिक बुद्धि *, विनय बुद्धि, कम्मिया बुद्धि और प्रणामिया बुद्धि मीलके १४ भेद. (२) 'श्रुत ज्ञान' अर्थात् उपदेश सून के अथवा शास्त्र पठनेसे जो ज्ञान संपादन किया जावे सो. उस के भी अक्षर श्रुत अनक्षर श्रुतादि १४ भेद हैं और जहां श्रुतिज्ञान है वहां मतिज्ञान भी नियमा से होता है.

(३) अवधिज्ञानः-इस ज्ञान वाले मनुष्य जघन्य अंगुल के असंख्यातवे भाग उत्कृष्ट संपूर्ण लोक तथा

---

* उत्पातिक बुद्धि अर्थात् तत्कालिक बुद्धि; समय सूचकता, शोधक बुद्धि, विनय बुद्धि अर्थात् विनय करके जो ज्ञान संपादन करे सो. कम्मिया बुद्धि अर्थात् कार्य करते २ अनुभव मे जो बुद्धि आवे सो. प्रणामिया बुद्धि अर्थात् ज्यों ज्यों वय प्रणमती जाय त्यों त्यों बुद्धि बढ़ती जावे सो.

लोक जैसे असंख्यात खंडवे अलोक में होवे तो भी देख सकते हैं अर्थात् रूपी पदार्थ को देख सकते हैं. इसके असंख्यात भेद कहे हैं. इसकाल में पाहिले दो जात के ज्ञान हैं और अवधिज्ञान तो कभी थोडा१कोइ मनुष्य को आयुष्य के अंत में होजाता है [४] मनःपर्यव ज्ञानः —इस ज्ञानवाले जीव मनकी बात जान सकते हैं. उस के २ भेद हैं (१) ऋजूमति सो किंचित् कम अढाइ द्वीप में और (२) विपुलमति सो संपूर्ण अढाइ द्वीप में जो संज्ञी पचेन्द्रिय जीव हैं उनके मनकी बात जाणे. यह ज्ञान फक्त साधूजी को ही हो सकता है (५) केवल ज्ञान-इस ज्ञानवाले जीव सर्व-द्रव्य—क्षेत्र काल भाव-भव की बात यथातथ्य जानते हैं. छद्मस्थपणेसे निवर्ते के तेरहवे गुणस्थान में जाने वाले को यह ज्ञान होता है. इन पांचों ज्ञान का विस्तारपूर्वक कथन श्री नंदीजी शास्त्र में है.

ज्ञानी किसको कहना ?

जो सज्जन हैं वो तो आत्मार्थी हो के ज्ञान संपादन करते हैं;वो कुछ वाग्युद्ध के लिय किंवा पेट भराइ के लिये शास्त्रों को कंठाग्र नहीं करते हैं. यदि कोइ मनुष्य जानेगा कि अमुक कार्य से अमुक लाभालाभ है तो फीर वह अलोभ का कार्य कैसे करेगा ? अर्थात् नहीं करेगा. ज्ञान के साथ श्रद्धहना और उसकी साथ तदनुसार आचार शुद्धि भी चाहिये. मराठी में कहा है कि-'व्यर्थ भारो भरी भारी केले पाठांतर, जोवरी अंतर शुद्ध नहीं.' अर्थात् जब तक अंतःकरण शुद्ध नहीं हुआ तब तक सब ज्ञान व्यर्थ है. ज्ञान और क्रिया दोनों साथ में होनेसे मनुष्य शोभता है. व्यवहार में देखो ! 'बेकन' बडा भारी पंडीत और विचक्षण आदमी था, कहते हैं कि ऐसे चालाक नर इस जमाने में थोडे होते हैं परंतु उस का दिल और आचार शुद्ध नहीं था. इस लिये एक अंग्रेज कवीने कहा है के

" Bacon the uisest and meanest of mankdm " अर्थात् " मनुष्य में सबसे बुद्धिमान और सब से तुच्छ बेकन. " ऐसे ही कितनेक लोग वीतराग देवके प्रणित सूत्रों का ज्ञान संपादन करते हैं; परन्तु आचार भ्रष्ट होते हैं और कहते हैं कि ज्ञानी को तो कर्म लगते ही नहीं हैं और ज्ञानी तो व्यभिचारादि सेवन करते हैं उस में भी कुछ गुप्त उत्तम हेतु रहा है और " धर्म क्रिया तो शुष्क है. इस से क्या होता है ? " ऐसा समझा कर अन्य को भी धर्म से भृष्ट बनाये हैं बडा भारी जूलम तो यह है कि— कितनेक साधू लोग भी ऐसे दंभी के फंदे में फसाये हैं तो अल्प ज्ञो संसरीयों का तो कहना ही क्या ? अफ सोस है कि ऐसे दंभिकों के फंदे में बहुत लोगों फसकर डूबरहे हैं ! अब देखिये ! कैसी भृष्टता ! इस से तो सरलस्वभावी अल्पज्ञानी सदाचारी लोग बहुत उत्तम हैं

सच्चे ज्ञान वाले के १० लक्षण हैं:—

अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रि येषाम् क्षमा दया सर्वजनप्रियातास् निर्लोभ दाता भयं शोक मुक्ता, ज्ञानी नराणां दश लक्षाणानि ॥

(१) अक्रोध, [२] वैराग्य, [३] जितेन्द्रियपणा, (४) क्षमा, (६) सर्व जनों को प्रिय लगे ऐसि वर्त्तणुक, (७) निर्लोभता, (८) दान [विद्या दानादि.] [९] भय रहीतपणा, और (१०)शोक राहितपणा. और भी कहा है:—

गइ वस्तु सोचें नहीं, आगम वांच्छे नाही;
वर्त्तमान वर्त्तें सदा, सो ज्ञानी जग मांही ॥ १ ॥

ज्ञान का फैलाव के लिये क्या करना ?

अब मैं बताऊंगा कि—ज्ञान का फैलाव के लिये हरएक मनुष्य का क्या कर्त्तव्य है.

संसारी जनों का कर्त्तव्यः—सूत्र में बहुत ही जगाह श्रावकों के संबंध में लीखा है कि,"अभि गया

फिरे. अपने ज्ञान और सदाचार से संसारी जनो को भी तारे; पूर्व के महात्माओं के रचे हुए पुस्तको का संशोधन करे--करावे और उन को प्रसिद्धि में लावे. स्वमतकी साथ परमतके शास्त्र का भी अभ्यास करे और उन की स्हायसे संसारी जनोंका मिथ्यात्व को छेदे. मनुष्य स्वभाव कैसा है, कैसे वचन से उसने अच्छी असर होती है, उस का अनुभव करे और भाषणकल शीखे. न्याय-तर्क आदि शीखे. साधु के शिरपे कर्त्तव्यका इतना बजन है कि जो कोइ सच्चे साधू होते हैं उन को निद्रा लेने का भी बख्त भी बहुत कम मिलता है!

जब साधुओं और संसारीओं इस तरह अपनी कर्त्तव्य समझ कर कर्त्तव्यपरायण होगे तब ही इस आर्यदेश और आर्य धर्म की उन्नति होगी. ज्ञान का फैलाव सब जगा में होने से कुसंप और क्लेष आप ही ले जायगे, मिथ्यात्व आप ही अदृश्य होगा, आलस्य

का स्वयमेव नाश होगा और मनुष्यत्व और आत्मज्योति का प्रकाश होगा.

परम पुज्य श्री काहानजी ऋषिजी महाराज के सम्प्रदाय के बाल ब्रह्मचारी श्री अमोलक ऋषिजी रचित्त धर्म तत्त्व संग्रह का ग्रन्थ चेइय नामक नववा प्रकरण समाप्तम्

प्रकरण दशवा—बंभचेरे—ब्रह्मचर्य.

तं बंभं भगवंतं (ब्रह्मचारी भगवंत) प्रश्नव्याकरण.

जंबू ! ततोय बंभचेरं उत्तम तव नियम नाण दंसण चरित्त सम्मत्त विणय मूलं"

अहो जम्बु ! ब्रह्मचर्य है सो उत्तम-तप-नियम ज्ञान-दर्शन चारित्र सम्यक्त्व और विनय का मूल है. प्रश्नव्याकरण.

वेदपठन, कविचातुरी, सब व तो है सेल;
आत्मचढन, इन्द्रिदमन, कामजीतन मुश्केल.

सब जन्मोंमें मनुष्यजन्म ही मोक्ष साधना के लिये उपयोगी है और मनुष्यजन्ममें भी वीर्य बहुत उपयोगी है, * क्यों कि उसकी सहायसे ही सब प्रकार ही कार्य होते हैं, धर्म या कर्म, पुण्य या पाप सब में

वीर्य कहाता है. वीर्यका व्यय जैसे कार्य में किया जाता है उसका फल वैसाही होता है. कोइ दुष्ट लोग व्यभिचार करके और कोइ स्वस्त्रीसेवन में अमर्याद होकर इस अमूल्य खजानेको व्यर्थ गुमाते हैं. कोइ अच्छे मनुष्य उसका अच्छी तरह से रक्षण करके ज्ञान-ध्यानादिमें व्यय करते हैं. उन दोनों दृष्टांत में वीर्यका कुछ दोष नहीं है. वीर्य है सो तो अमूल्य खजाना है, परन्तु उसका उपयोग अच्छा करेगा तो कल्याणकारी होगा और बुरे काम में उपयोग करनेसे नाशकारक परिणाम होगा; जैसे कि लक्ष्मीसे सुपात्र दानादि शुभ कार्य भी हो सकते हैं और मद्यपान-विषपानादि बुरे कार्य भी हो सकते हैं. जैसे बिना लक्ष्मी संसारी जनों निस्तेज दिखते हैं, ऐसे ही बिना वीर्यके लोग कमजोर, कम अक्कल और निस्तेज दिखते हैं. व्यापार, रम्मतगम्मत, ज्ञानाभ्यास तप जप ध्यान आदि सब में वीर्यकी जरूरत है. इस लिये

सुखके अभिलाषी सज्जनोंको लाजिम है कि वीर्यका अच्छी तरह से रक्षण करना.

कितनेक लोग वीर्यको दुष्ट (व्यभिचारी) विचारोंमें गुमाते हैं और कितनेक दुष्ट (व्यभिचारी) कार्य में गुमाते हैं. लक्ष्मीका दुरुपयोगसे वीर्यका दुरुपयोग करना यह बडा भारी गुन्हा है और बहुत हानिकारक है.

दुष्ट (व्याभिचारी) विचारोंका जन्म दुष्ट सोब तसे, रागरंग—खेल—तमासा—रंगीले नाटक आदि देखनेसे, विषयी कथाओ और काव्यों बांचनेसे, नग्न चित्रोंको देखनेसे, और स्त्रीयोंको वारंवार निहालनेसे होता है. इसलिये जो लोग अपना अमुल्य वीर्यखजाना का रक्षण करने की दरकार करते हैं उनको लाजिम है कि इन सब कुविचारों और कर्चाजोंसे दूर ही रहना.

दुष्ट (व्याभिचारी) विचार थोडे वख्त में व्याभि

चारी कार्यका रूप धारन करते है, अर्थात् मनुष्य व्याभिचारी हो जाता है. दो प्रकारके पुरुषोंको व्याभिचारी कहते हैं (१) स्वस्त्रीमें अत्यंत रक्त होकर अनियमित हो जावे ऐसे लोग; और (२) परस्त्रीगमन करनेवाले लोग.

अफसोसकी बात है कि—कितनेक लोग स्त्रीको विषयसेवनका सांचा तूल्य मानते हैं. वंशवृद्धि और विषयतृप्ति ही जिसका कुल आशय है ऐसे जनको जानना चाहिये कि—सज्जनों लग्न करते हैं सो संसारव्यवहार चलानेमें विश्वासु मित्रकी जरुरत होनेके लिये करते हैं, मतलब कि-स्त्रीको गृहकार्य सोंप कर आप फुरसद लेकर परमार्थ और धर्मकार्य में चित्त लगासके. न कि केवल विषयतृप्ति के लिये ही—स्त्री का विशेष परिचय बडा नुकशान करता है.

श्लोक—दर्शनात् हरते चित्तं, स्पर्शनात् हरते बलं ॥
संभोगान हरते वीर्य, नारी प्रत्यक्ष राक्षसी ॥

अर्थ-स्त्री को देखने से चित्तका, स्पर्श मात्र से बलका, और संभोगसे वीर्य का हरण होता है; इस लिये नारी प्रत्यक्ष राक्षसी है. परन्तु जो संसारी जीव विषय वृत्तिको अंकुश में रख कर उस की सहाय से धर्म ध्यान में चित्त लगाते हैं वो 'भाव साधू' कहे जाते हैं.

विषयरागी लोगका शरीर क्षीण हो जाता है (भर्तृहरीने कहा हैं कि 'भोगे रोग भयं'), चित्त भ्रष्ट हो जाता है, लाज शरम नष्ट होजाती है, पुत्र—मित्र—गुरु आदिक कोइ प्रिय नहीं लगता है, और मनुष्यत्व अदृश्य हो जाता है. इस लिये इस कामदेव को मदन (मद उपजाने वाला), मन्मथ (मानका मथन करनेवाला), मार (मारनेवाला), प्रद्युम्न (पर को दमन करनेवाला) इत्यादि * नाम कोष में दिये हैं.

मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः ।
कन्दर्पो दर्पकोऽनंगः कामः पंचशरः स्मरः ॥
शम्बरारिर्मनसिजः कुसुमेषु रनन्यजः ।
पुष्पधन्वा रतिपति र्मकरध्वज आत्मभूः ॥—अमरकोष

इसलिये सुज्ञ जनों को लाजिम है कि–अपनी पत्नी स्त्री की साथ भी अमितव्ययी नहीं होना. मितव्ययी आदत को टीकाने के लिये कितनीक चावीओं [Keys] यहां लिखते हैं:–

(१) रे जीव ! तूं जाजरु (संडास) में जाता है तब ज्यादा वख्त उधर ठेरने का तुझे पसंदहैक्या?

(२) क्या भोग विलास में ही सब आनंद आ रहा है ? उत्तम पुस्तकों का पठन, सत्पुरुषों की सेवन, दुःखी जनों को मदद: इत्यादि कार्य से जो आनंद होता है. उस की आगे विषय सुख कुछ गिनती में नहीं है और भी. भोग विलास जितनी वख्त होता है इतनी वख्त ताकाद घटती जाती है. परन्तु उक्त कार्यों से जो आनंद होता है वो तो ज्यों ज्यों ज्यादे मिले त्यों त्यों ताकाद बढती ही जाती है.

(३) यह जन्म पूर्व जन्म और आगेके जन्म की

सांकल तुल्य है. उस को क्षुद्र विषय सेवन में गुमाने वाले मनुष्य मूर्ख है.

(४) संतोषःस्त्रीषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने धने ॥
त्रीषु चैव न कर्त्तव्यो दाने चाध्ययने तपे ॥

अर्थात् तीन बातों में संतोष रखनाः (१) स्वस्त्री में (२) भोजन में और [३] धन. में. और तीन बातो में संतोष नहीं रखनाः (१) दान, देने में (२) अभ्यास करने में और [३] तप, करने में.

[५] स्त्रीका शरीर गंदकी से भरा हुआ है. उस की अंदर हाड–मांस–रुद्र विष्टामूत्र श्लेष्म आदि भरे हैं. एक कविने कहा है किः—

नार नरक की खान है; दुरगंध अंग अपार;
ऐसी उन की देह है, जैसो कुंड चमार;
जैसो कुंड चमार, जान कर कैसे जावे;
उत्तम मान। देह, जान के नर क्यों डुबावे;

भीखन कनैयो भणे, उन से होत हेरानी,
दुरगंध अंग अपार, नार नरक की खानी.

ऐसे नारी देह की गंदगीका चिन्तवन करने से तत्काल ही मोह कमी होजाता है.

(६) विजय शेठ और विजया शेठानीका, सुदर्शन-शेठका, नेमनाथ भगवानका, सीताआदिका इतिहासयाद करने से भी विषय लालसा कमी होगी.

[७] एक वक्त स्त्री सेवन से नव लाख संज्ञी पचेन्द्रिय और असंख्य संमूछिम जीवों की उत्पत्ति और संहार होता है. पाश्चिमात्य विद्वानों ने इस बात की खात्री भी की है.

इन सब बातों का विचार कर सुज्ञ गृहस्थों को लाजिम है कि स्वस्त्री सेवन में भी अमितव्ययी न होना.

अब में परस्त्रीत्याग के लिये दो शब्द कहुंगा-परस्त्री सेवन सब अपराधोंमें वडा भारी अपराध गीना जाता है,

क्यों कि इससे नीतिका भंग, चोरी, झूठ, आदि बहुत ही दोषों लगते हैं. इस गुन्हेगारको राजा भी दंड और कैदकी शिक्षा करता है, और लोगों भी उसकी निंदा करते हैं, व्यभिचारीसे धर्म बहुत ही दूर रहना है. तन, बुद्धि, धन, धर्म, आबरु सबका नाश करनेवाले व्यभिचारसे दूर रहनेके लिये सुंदरदासजीने कहा है—

" अहो मेरे मन मृग ! खोली देख ज्ञान दृग !
यह बन छोडी कहुं और ठौर चरना ! "

÷ शेर जोपडे रंडीके फंद में, वह बडा बेजार है ॥
एकतो इज्जत घटे, दूसरा पेजार है ॥ १ ॥
जो बच रंडी के फंदसे, वह बडा होश्यार है ॥
एकतो इज्जत बढे, दूसरा तैयार है ॥ २ ॥

सब धर्मोंके शास्त्रों में और सब जमाने के लोगोंने व्यभिचारका निषेध किया है; इस लिये व्यभिचार से अवश्य ही दूर रहना चाहिये. व्यभिचारकी लालसाको हठानेकी चाबी यह है कि, परस्त्रीका रूप निरखना नहीं; जिस

दृष्टिसे अपनी माता और भगिनीका शरीरको देखते हैं इस ही द्राष्टिसे सब औरतोंको देखना. क्यों कि-उनके और उसके शरीर मे कुछ फरक नहीं है, स्त्रीके लिये यह बात उपयोगी है कि—अपने पतिके सिवाय जितने पुरुष हैं उन सब में स्त्रीभाव कल्पना. पुरुष में स्त्रीकी दृष्टि आरोपनेसे बिकार नहीं होता हैं.

एक और भी प्रकारका व्यभिचार है कि जिसको' मानसिक व्यभिचार' कहतेहैं. सुंदरस्त्रीको देखनेसे मनको व्यभिचार में लगाते हैं ऐसे बहुत ही पुरुषों हैं. कायिक व्यभिचारका मूल मानसिक व्यभिचार ही है, इनके प्रतापसे कितनेक लोग सृष्टिविरुद्ध कर्म भी सीखते हैं और मनुष्य मीटके पशु बनते हैं· ऐसे मनुष्यको सुधार-ने के लिये मिताहार, सत्संग, स्त्रीयोंके निवाससे दूर रहना, ज्ञान——ध्यानके ग्रंथोंको पढना, खुल्ली हवा में फिरना: इत्यादि उपायो लेना चाहिये.

यह सब बातों सामान्य संसारियों के लिये हुइ परंतु

जो उत्तमोत्तम प्राणी हैं और साधु पुरुष हैं उनको तो स्त्री से तद्दन ही दूर रहना चाहिये. ऐसे पुरुष को श्री आचारांग जी सूत्र में कहा है कि—गिद्धेए अणुपरियट्टमाणे, संधिं विदित्ता इह माच्चिएहिं, ऐस वीरे पसंसिए जे बद्धे पडिमोयए. "अर्थात्—" विषय में गद्धबने लागों बारंबार ससार परिभ्रमण करते हैं. इस लिये जो प्राणी मनुष्यजन्म का अवसर मिला समज कर विषयादिक को त्यागे उस को उत्तम पराक्रमी कहा जाता है. ऐसे पुरुष संसार में लुब्ध बने हुए अन्य पुरुषों को भी बाह्य और आभ्यंतर बंधन से छुडाते हैं.

ब्रह्मचारी महात्माओं के व्रत (नियम) के रक्षण के लिये ९ वाड (किल्ले) शास्त्रकारोंने बाताये हैं. यथा (१) "देव-मनुष्य-तिर्यच जाति की स्त्री, पशु और नपुंसक जिसघर रहते होवे उसघर में ब्रह्मचारी को रहना नहीं चाहिये." क्यों कि बीह्ली और मुशक (उंदर) एकही स्थान रहे तो उंदर की जिंदगी जोखम में रहती है. श्री 'दशवैकालिकके आठवे अध्ययन में कहा है कि:—

हत्थपाय पाडिच्छिन्नं, कण्णनासं विगप्पियं ।
अवि वाससयं नारिं, बंभयारी विवज्जए ॥

जिस स्त्रीके नाक कान, हस्त और पांव काटे हुए होय और जो १०० वर्ष की बृद्धा होय ऐसी स्त्री का भी विश्वास ब्रह्मचारी को करना नहीं चाहिये.

(२) " स्त्रीके शृंगार, वाग्चातुरी, रूप लावण्य हाव भाव आदिकी कथा वार्त्ता नहीं करना. " इस फरमान का हेतु यह है कि—ऐसी कथा कामोत्तेजक होती है. जैसे कि, लिंबू आदि खट्टी चीज का नाम लेने से मुख में पानी छूटता है, वैसे ही स्त्रीके सौंदर्यादि का वर्णन करने से विकार उत्पन्न होता है.

(३) " स्त्री की सोबत नहीं करना; जिस आसनपे स्त्री बैठी होय उस स्थानपे बैठना नहीं. (वह उठ गये पीछे दो घडी पहिले नहीं बैठना)."; एक डब्बे में कस्तुरी और लसण रखने से कस्तुरी की बास बिगड जाती है.

(४) " स्त्रीके अंगो पांग को निरखना नहीं

स्नान किये विना ही शुद्ध है.

इस तरह नववाड विशुद्ध ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले को:—

> देव दाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा।
> बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति ते॥
>
> श्री उत्तराध्ययन सूत्र.

अर्थात, दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले को देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरादि भी नमन करते हैं.

यहां दश विधि धर्म का बयान खतम होता है, जो मनुष्य इन को पालते हैं वे इस जन्म में निर्दोष सुखी जींदगी गुजारते हैं, लोक में मान कीर्त्ती पाते हैं उन का आत्मा शांति में ही रमण करता है. और भविष्य में भी स्वर्ग तथा मोक्ष में जाकर सुखी होते हैं.

यों सर्व प्राणी यों धर्मनुरागी हो और सुखी हो !

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज के
सम्प्रदाय के बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक
ऋषिजी महाराज रचित

धर्मतत्त्व संग्रह समाप्तम्

तत्त्वशुद्धि-प्रकरण

धर्माराधन के तत्त्व तीन हैं- (१) सद्देव जो १ अज्ञान, २ मद, ३ क्रोध, ४ मान, ५ माया, ६ लोभ, ७ रति (खुशी) ८ अरति (ना खुशी) ९ निद्रा, १० शोक. ११ झूट, १२ चौरी, १३ मात्सर्य १४ भय, १५ हिंसा, १६ प्रेम, १७ क्रीडा, और १८ हॉस्य. इन १८ दोषों से रहित होवे ऐसे अरिहन्त देव वो देव कर माने. (२) सद्गुरु जो-१ हिंसा, २ झूट, ३ चोरी, ४ मैथुन, ५ परिग्रह. इन पांचों आश्रव (पाप) का त्याग करे. ६ श्रोतेन्द्रिय [कान] ७ चक्षु इन्द्री [आंख] ८ घ्रानेन्द्रिय [नाक] ९ रसनेन्द्रिय (जिव्हा) १० स्पर्शेन्द्रिय इन पाचों इन्द्रिय के विकार को जीते ११ क्रोध, १२ मान, १३ माया, १४ लोभ इन चार कषाय को जीते, १५ भाव सत्य, १६ करण

(क्रिया) सत्य, १७ योग सत्य, १८ मन समाधारना १९ वचन समाधारना. २० काया समाधारना, २१ ज्ञान सपन्न २२ दर्शन सम्पन्न, २३ चारित्र सम्पन्न, २४ वेदनी समभाव सहे, २५ मरणांत कष्ट सम भाव सहे, २६ क्षमावंत और २७ वैराग्यवंत. इन २७ गुण युक्त होवे सो निर्ग्रन्थ गुरुमाने और (३) सद्धर्म-जिसमें १ पृथवी २ पानी ३ अग्नि ४ वायु, ५ वनस्पति, और ६ त्रसप्राणी. इन ६ ही काय जीवोंकी घात नहीं होवे २ झूट ३ चौरी ४ मैथुन ५ परिग्रह. ६ क्रोध ७ मान. ८ माया, ९ लोभ, १० राग ११ द्वेष १२ क्लेश, १३ कलंक १४ चुगली. १५ निन्दा, १६ रति, अरति. १७ मायामृषा और १८ कुदर्शन (धर्म) का शल्य. इन १८ दोषों (पाप) रहित जो कर्तव्य होवे उसे धर्म माने.

उक्त तीन तत्त्वके आराधन के लिये तीन प्रकार की मूढता से बचना चाहिये. यथा—

१ देवमूढता—अनन्तज्ञानादि अनन्तगुनों सहित

और मिथ्यात्व अज्ञानादि अठारह दोष रहित ऐसे जो श्रीवीतराग सर्वज्ञ देव हैं उनके स्वरूपको नहीं जनता हुआ जीव—यश—लाभ—स्त्री—पुत्र—राज—सुख इत्यादिकी प्राप्ति की आशा मे जो राग द्वेष युक्त आर्त रौद्र परिणाम के धारक क्षेत्रपाल चाण्डिका पीर भैरू भवानी आदि मिथ्या-दृष्टी देव का आराधन करते हैं उसे देव मूढता जानना "जो देवता अपनी आश राखे, वें मोक्ष के सुख कैसे दाखे." अर्थात् जो देव का तो नाम धारन कराया और मनुष्यों के पास अपनी पूजा कराने की नारियल आदि कुच्छ वदला लेकर इच्छा पूर्ण करने वाले कहलाते हैं वे बेचारे आपही की नारियल चांवल जैसे कम कीमती पदार्थों को प्राप्त कर अपनी ही इच्छा पूर्ण नहीं कर सकते हैं तो दूसरे की इच्छा कैसे पूर्ण करेंगे.÷ तथा वे इतने भोले हैं कि नारियलादि अल्प मूल्य वस्तु के वदल पुत्र धन आदि वहुमुल्य वस्तु तुमे देदेवेंगे. इस प्रकार क॰

÷पद=देव के आगे बेटा मांगे तब तो नारेल फूटे ॥ मोटे २ आप गावे, उन को चडावे नरोड ॥ जग चले उपाटे, झूठो साहिब कैसे भेटे॥-कबीर

जो विचार नहीं करते हुवे को देवों का आराधन करते हैं उसे देव मूढता जानना.

२ लोक मूढता—गंगा आदि नदी को तीर्थमान, उस में स्नन न करना. ग्राम पहाड घर आदि स्थानों को तीर्थ रूप मान उन के दर्शनार्थ भटकता फिरना. प्रातः संध्यादि काल में स्नानादि पाप कार्य किये विना धर्म होवे नहीं ऐसी बुद्धि धारन करना. गौ आदि पशुओं में तथा बड पिंपल आदि वृक्षों में देव का निवास मान उसे पूजना. इत्यादि कार्य में धर्म बुद्धि या पुण्य बुद्धि धारन करना सो लोक मूढता. अज्ञानी जन तो परमार्थ के अनजान हो कर उपरोक्त कर्तव्य करते हैं परंतु सम्यक् दृष्टिओं को तो जो जानना चाहिये कि-स्नानादि करने से पाप की शुद्धि होती हो तो फिर दुनिया में जाति भेद ही रहे नहीं. क्यों कि-चांडालादि नीच जाति के मनुष्य को भी स्नान कराकर पवित्र-उत्तम जाति बनाले. और अपवित्र वस्तु विष्टादि को पवित्र बना भोगवले, अजी! कडवी तुम्बी को सब तीर्थों के पाणी में पखाले तो भि क्या वह मीठी होगी

है? कदापि नहीं. जो तुम्बी भी मीठी नहीं होती है तो यह रुद्र शुक्र से उत्पन्न हुवा हाड मांस रक्त विष्टा मुत से भरा हुवा शरीर कैसे पवित्र होगा ? और जो शरीर ही पवित्र नहीं होता तो फिर पाप रूप मैल का नाश कर आत्माको पवित्र बनाने की सत्ता तीर्थो के पानी में होवे ही कहां से? अर्थात् तीर्थ के पानी मे पवित्र करने का मना नहीं है देखिये! मुनिजी अपनी समृति में क्या उल्लेख करते हैं

यामो वैवस्वता राजा ! यस्त वैपह हृदि स्थितः ॥
तेन चेदविवादस्ते, मा गङ्गा मा कुरुगमः ॥ १ ॥
यस्य हस्तौच पादौच, मनश्चैव सुसंयतम् ॥
विद्या तपश्च तीर्थश्च, स तीर्थमल श्नुते ॥ २ ॥
अशनं व्यसनं चैव, गङ्गा तीर कुमार्गतः ॥
कींकटेन समा भूमी, गङ्गा चाङ्गारवाहिनी ॥ ३ ॥

अर्थात्—अरे मनुष्य ! यह जो अन्तर्यामी तेरे हृदय में है. यदि तुझे इस बात का विवाद नहीं है तो तूं गंगा कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों को मतजा ॥ १ ॥ जो मनुष्य हाथ पांव इन्द्रियों और वाणी को नियम में रखकर

विद्या और तपश्चर्या रूप तीर्थ करता है उसे दूसरे तीर्थ से कुछ भी जरूर नहीं है ॥ २ ॥ जो गंगादि तीर्थों में जाकर पाप कार्य कर्ता है तो वह नदी के किनारे के कीटक (कीडे) तुल्य है ! और जले हुवे अंगार के तुल्य है ॥ ३ ॥ कहिये सुज्ञो ! इस से ज्यादा और क्या कहें ! !*

औरभि श्री जिनेश्वर भगवानने उत्तराध्ययन सूत्र के दशवे अध्ययन की ३१ वी गाथा में कहा है कि—" नहु जिणे अज्ज दिस्सई " अर्थात् पंचम काल में तीर्थंकर के दर्शन नहीं होंगे ! इन वचनो का ख्याल नहीं

आत्मा शुद्ध तपश्चर्या से होता है. देखो ! ऋषि कुल ग्रन्थ

श्लोक—कैवर्तगर्भसंभूतो, व्यासो नाम महामुनिः ॥
तपःश्चर्याद्ब्राह्मण जातो, तस्मात्न जाति कारणम् ॥१॥
चाडाल गर्भ संभूतो, विश्वामित्र महामुनिः ॥
तपःश्चर्याद्ब्राह्मण जातो, तस्मात्न जाति कारणम् ॥

अर्थ-धीवरनी (भोईन) और चाडालनी से उत्पन्न हुवे व्यासजी और विश्वामित्रजी अपना आत्मा को तपश्चार्या से पवित्र बनाकर महाऋषि के पद को प्राप्त हुवे हैं !

निरुंधन किये बिनाही साधु बने हैं, वे तपश्चर्या का नाम धारन कर अग्नि में जलते. छाने लकडादि इन्धन के आश्रित तथा कन्द मूल फल फूल पत्तादि वनस्पति के आश्रित संख्यात असंख्यात अनन्त जीवोंकि घात करते हैं. इस प्रकार कितनाभी शरीर को कष्ट दियातो भी वह गुरु पद के लायक नहीं होते हैं. साधु तो पंचमहाव्रत धारी छहीं काया के रक्षक ही होते हैं. और भी जिन शास्त्रों में हिंसादि पांचों आश्रव सेवन का उपदेश हो तथा कामकथा आदि कुकथाओं का संग्रह हो अनमिलते गपोडे हों वे शास्त्र नहीं हैं. क्यों कि सब मतावलबियों में धर्म का मूल दया ही कहा है और फिर हिंसा के काम कर धर्म श्रद्धते हैं यह प्रत्यक्षय ही मूढता होती है, ज्ञानार्णव ग्रन्थ के ८ वे स्वर्ग में कहा है कि—

श्लोक—अहोव्यसन विध्वस्तैर्लोकःपाखण्डिभिर्बलात् ॥
नीयते नरकं घोरं हिंसा शास्त्रोपदर्शक ॥ १३ ॥

अर्थात्-अहो इति खेदाश्चर्य है कि-धर्म तो दयामय

जगत् में प्रसिद्ध है परन्तु विषय कषाय से पीडित पाखंडीजनों हिंसाके उपदेशक शास्त्रों रचकर जगत् जीवों को बलात्कार से धर्म में ले जते हैं ! यह बडा अधर्म है.

उक्त तीनों मूढता का स्वरूप को सम्यग्द्रष्टी यथा तथ्य समझकर इन से अपनी आत्माको बचावे और ऊपर कहे हुअे १८ दोष रहित देव, २७ गुण युक्त गुरु तथा १८ पाप रहित धर्म इन तीनीं धर्म तत्त्व का यथातथ्य श्रद्धानकर दश विध धर्म में उत्तरोत्तर प्रवृत्ति कर आत्मोद्धार करना.

॥ इति धर्मतत्त्व प्रकरण समाप्तम् ॥

☞ यह तीनों मूढता का कथन प्रथमा वृति मे नहीं छपा है परन्तु प्रसिद्ध कर्ता ने इन ही महाराजश्री कृत परमात्ममार्ग दर्शक के दर्शन-सम्यक्त्व नामक १० वे प्रकरण में पढा. यह इन को उपकारिक और प्रियकारी लगने से इस पुस्तक में छापने का अत्याग्रह किया जिसलिये यहां इस प्रकरण को छापा है.

मणिलाल शिवलाल शेठ.
जैनशास्त्रोद्धार कार्यालय.